निवेदन

महाकवि महर्षि वेदव्यास-प्रणीत 'महाभारत' के जिस अंश को पढ़िये, वही आपको चमत्कारसे रहित नहीं मालूम होगा। जिसमें भी 'वन-पर्व' में तो पूर्व-समय का आचार-व्यवहार, राजनीति, धर्मनीति और लोक-शिक्षा विशेष रूप से वर्णित है। जिन सब शिक्षाओं को अवश्य जानना चाहिए, वे सब उस में भली भाँति लिखी हैं; इसीलिये मैंने यह भाग सङ्कलन करके "पाण्डव-वनवास" नाम से प्रणयन किया है। अतिरिक्त उपाख्यान-भाग को छोड़ कर, केवल इसमें पाण्डवों के चरितोपाख्यान-मात्र का ही संग्रह किया है।

इसके पढ़ने से दुर्योधन का क्रोधी स्वभाव, शकुनि का मन्त्रणा-कौशल, धर्मराज युधिष्ठिर की गुरु-निर्देशवर्त्तिता और धर्म-भीरुता, अनुजों की बड़े भाई की वशवर्त्तिता और वीरोचित धीरता, पाण्डव-महिषी द्रौपदी का प्रत्युत्पन्नमतित्व और वीर-वनिता के कर्त्तव्यों का विषय भली भाँति जाना जा सकता है। शौनक का धर्मनीति-विषयक उपदेश, राजमहिषी की राजनीति से

सम्बन्ध रखने वाली बातों पर ज़बर्दस्त दलीलें, भीमसेनका वीर-जनोचित उत्साह-वर्द्धन-वाक्य-विन्यास, उन-उन विषयोंकी उत्साह-शक्ति के उद्दीपक प्रतीत होते हैं। राजा युधिष्ठिर ने युक्तियुक्त तर्क द्वारा इन सभी विरुद्ध मतोंका खण्डन कर, धर्म का उद्देश्य सम्पादन करते हुए, धर्मराज-पदवी को भली भाँति अलङ्कृत किया है। इससे न्यायपरता का विषय भली भांति प्रतिभात होता है।

पूर्व्व-समय में महात्मा पाण्डवों ने भारत-भूमि के सभी तीर्थों का दर्शन कर, हिमालय के उत्तर भाग में बदरिकाश्रम पर्य्यन्त पर्य्यटन कर, अन्तमें कैलास पर्वत के उत्तर-वर्त्ती मन्दरगिरि की सीमा तक जाने का मार्ग आविष्कृत किया था, उसके पढ़ने से उसका संक्षिप्त विवरण मालूम होता है। अर्जुन-कथित स्वर्ग-वृत्तान्त और प्रेतपतिका आवास, जीव-गण की अवस्था का विवरण सुनने से धर्म के प्रति श्रद्धा और अनुराग, सत्कार्य्य पर आस्था और अधर्म के ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न होती है। इन्हीं बातों का ख़याल करके, वनपर्व्व का यह अंश सर्वसाधारणके सम्मुख रक्खा जाता है। यह महाभारत का अविकल अनुवाद नहीं है; केवल उसकी छायामात्र ग्रहण कर, कल्पनाशक्ति की सहायता से यह पुस्तक प्रस्तुत हुई है।

यह पुस्तक श्री श्रीमन्त शर्म्मा विद्याभूषण प्रणीत "पाण्डव निर्वासन" नाम की बङ्गभाषा की पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसलिये मैं शर्मा जी के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

हाँ, एक बात और कहनी है, वह यह कि मैं इसकी भाषा सरल न रख सका, इसका मुझे सख्त अफसोस है। पर इस क्लिष्ट और आलङ्कारिक भाषा से हिन्दी की ज्ञान-वृद्धि करनेके इच्छुकोंको बड़ा भारी लाभ होगा। अगर यह पुस्तक पाठशालाओंमें पढ़ाई जायगी, तो इससे विद्यार्थियों को बहुत कुछ लाभ होगा। आजकल की तरह हिन्दीसे कोरे और कच्चे विद्यार्थी तैयार न होंगे। आशा है, टैक्स्ट बुक कमेटी मेरी बातों पर ज़रा ग़ौर से काम लेगी।

गाज़ीपुर पट्टी, शाहाबाद
१५—७—१९१८

विनीत—
पारसनाथ त्रिपाठी।

हे लज्जानिवारक दानवारि हरि! इस समय आपके सिवा दूसरा कौन मेरी लज्जा रख सकता है? पृष्ठ ४४

NARSINGH PRESS—CALCUTTA.

पाण्डव-वनवास

पहला परिच्छेद।

जूए के लिए निमन्त्रण।

पाण्डवों का जूआ खेलना और सर्व्वस्व हार जाना।

राजसूय-यज्ञ में युधिष्ठिर का ऐश्वर्य्य देखकर, दुर्योधन के नीच मन में ईर्षा हुई। वह इस चिन्तामें लगा, कि किस प्रकार युधिष्ठिरका ऐश्वर्य्य नष्ट हो जाय। दुर्योधन स्वभावसेही अभिमानी था। राजा युधिष्ठिर का असीम सम्मान, अतुल समृद्धि और सार्वभौम श्री देखकर उसके ईर्षा-कलुषित चित्त में

बड़ी गहरी चोट लगी। एक दिन उसने सुबल के पुत्र शकुनि से कहा,—"मामा! अब मैं राजधानीको नहीं जाऊँगा; जङ्गल में जाकर उपवास-द्वारा अपना यह जीवन नष्ट कर दूँगा; शत्रु का इतना अभ्युदय अपनी आँखों से देखकर मेरे जैसे पुरुष-सिंह क्या जीवनधारण कर सकते हैं? अपनी जाति के निकट हीन-प्रताप होकर, जन-समाज में क्या कभी अपना मुख दिखा सकते हैं? मेरा उन्नत मस्तक इस समय बिल्कुल अवनत हो गया है। मुझे जो जय की आशा थी, उसपर अब यह सब देख-सुन कर पानी फिर गया। उस दिन जो पृथ्वी के सभी नृपति युधिष्ठिरके अनुग्रह-प्रार्थी होकर, भेंट ले-लेकर द्वार पर खड़े थे, और बिना उनको अनुमति के सभा में प्रवेश नहीं कर सकते थे, वह तमाशा देखकर मेरे हृदय को प्रसन्न करने-वाली दुराशा अब मुझे आश्वासन नहीं दे सकती। उस समय मैंने केवल लोक-लज्जाके भय से, शत्रु के लिए यशस्कर और अपनेतईं लज्जाकर अजस्र विजय-घोषणा सुनी है; निरानन्दपूर्ण हृदय से प्रत्यक्ष रूपसे आनन्द प्रकाश किया है; लोग मुझे जाति-विद्वेषी न कहें, इसी गरज़ से मैंने वह सब सह्य किया है; नहीं तो राजसूय यज्ञ करना कोई सहज काम नहीं था। राजसूय यज्ञ करनेवाला ही वास्तविक राजा है; मैं व्यर्थ और नाममात्र का राजा होकर राजधानी में नहीं जाना चाहता। अतएव मामा! आप मुझे प्राण-परित्याग की आज्ञा देकर यहां से जाइये और पिता से कह दीजिए, कि वे अब दुर्योधन के लिए शोक

न करें; पौरुष-हीन पुत्र के लिए पिता को शोच करने को ज़राभी आवश्यकता नहीं।

शकुनि ने दुर्योधन को सान्त्वना देकर, मन्त्री के समान थोड़ी देर तक चिन्ता करने के बाद कहा—"वत्स! जाति की सौभाग्य-लक्ष्मी देखकर अन्तःकरण में उसको शुभद्वेषिणी ईर्षा का उद्रेक होना ही उन्नति-लाभ का असाधारण लक्षण है; कार्यार्थी मनुष्य ईर्षा से प्रेरित होकर अपना उपाय अन्वेषण करते हैं; अपना अभीष्ट साधन करने में प्राणपण से चेष्टा करके कृतकार्य भी होते हैं और सामान्यसूत्र से प्राणत्याग नहीं करते; किन्तु अपरिणामदर्शी शत्रुओं का अभ्युदय देखकर अधीर हो जाते हैं, और अज्ञतार्थ हृदय से निष्प्रतिक्रिय प्राण-परित्याग कर, केवल शत्रु का ही मनोरथ पूरा करते हैं। तुम कोई सामान्य राजा नहीं हो, कितनेही सामन्त तुम्हारी आज्ञा में हैं, युधिष्ठिर की अपेक्षा तुम किसी अंश में कम सौभाग्य-शाली नहीं हो; युधिष्ठिर के चार भाई हैं, तुम्हारे सौ भाई हैं; तुम्हारी ही सम्मति से राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को आधा राज दिया है। तुम्हारा साहाय्य-बल, बाहुबल और मन्त्री-बल युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक है; महाबलशाली, अमित विक्रम-युक्त कर्ण तुम्हारे सहायक हैं; महारथी, आचार्य और अतिरथ भीष्म तुम्हारे अन्नदास हैं। मेरे मन्त्री रहनेसे, तुम्हें किसी विषय में अभाव नहीं रहेगा; मेरा मन्त्रणाबल तुम्हारे अन्यान्य बलों की अपेक्षा प्रधान और कार्यकुशल है। जिस प्रकार

कैकेयी ने कौशल से अपने लड़के को राजा बनाया; उसी प्रकार मैं भी मन्त्रणाबल से पाण्डवों की श्री को तुम्हारे वश में कर दूँगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

"मैं जिस उपाय से पाण्डवों को श्री-भ्रष्ट कर दूँगा, उसे सुनो। शत्रु का रन्ध्र लक्ष्य कर, नीति प्रयोग करने से सहज ही में मनोकामना पूरी हो जाती है। इसीलिए नीतिज्ञ पुरुष आत्मछिद्र के छिपाने और पर-रन्ध्र के अन्वेषण में तत्पर रहते हैं। युधिष्ठिर की सभी राज-गुणों से भूषित होने पर भी, उनकी द्यूत-प्रियता बलवती है; यद्यपि द्यूत-क्रीड़ा नीति-विरुद्ध है; पर द्यूतानुराग के कारण वे इस प्रस्ताव से सहमत हो जायँगे; किन्तु उनका द्यूतानुराग जिस प्रकार बलवान है, उस प्रकार वे उसमें निपुण नहीं हैं; मैं अक्ष-क्रीड़ा में अद्वितीय हूँ, कूट-अक्ष-विक्षेप में विलक्षण हूँ, पणापण के परिज्ञान में दूरदर्शी हूँ; फलतः मेरे समान प्रवीण पाशा खेलनेवाला और कोई नहीं है, यदि यह भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी; मैं पाशा फेंकने की चतुरता से युधिष्ठिर की सारी सम्पति जीत लूँगा। पाशा खेलने के लिए बुलाने पर युधिष्ठिर इँकार नहीं कर सकेंगे। जिस प्रकार क्षात्रधर्मानुसार युद्ध के लिए बुलाने पर क्षत्रिय को युद्ध करना ही पड़ता है; उसी प्रकार द्यूत के लिए बुलाने पर खेल में सम्मिलित होना ही पड़ता है; इसी अनुल्लङ्घनीय क्षात्र-धर्म के नियमानुसार उन्हें बुलाना होगा। जिस प्रकार धर्म-भीरुता के कारण क्षात्रधर्मानुमोदित

द्यूत में उनकी प्रवृत्ति होगी, उसी प्रकार गुरु-निर्देश-वर्त्तिता के कारण धृतराष्ट्र द्वारा हस्तिनापुर में बुलाने पर उनको अक्ष-क्रीड़ा में फिर आपत्ति नहीं रहेगी। मैं इसी उपाय से युधिष्ठिर का सर्वस्व जीत लूँगा, यह स्थिर किया है ; तबतक तुम मेरी मन्त्रणा के बलाबल का विचार कर देखो ।"

दुर्योधन ने कहा—"मामा! आपकी इस सलाह से अवश्यही कार्य साधन हो सकता है, किन्तु कार्य सिद्ध हो जाय, तब जानूँ । मैं नीति-निपुण राजा से इस विषय में कुछ नहीं कह सकता ; क्योंकि सम्भव है, कि वे मेरी बात न मानें; ऐसा होने से मेरा बड़ा अपमान होगा। आप उनसे सलाह करके, उनके द्वारा पाण्डवोंको सभामें बुलवाइये, तभी आपकी मन्त्रणा के सिद्ध होने की सम्भावना है।" शकुनि ने कहा,—"वत्स ! इसके लिए तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसा सुयोग मैं ही कर दूँगा। तुम इस समय राजधानी में चलो।" दुर्योधन इस मन्त्रणा के ऊपर भरोसा करके, बड़े कष्ट से अपनी राजधानी को गया।

शकुनि ने हस्तिनापुर पहुँचकर, राजा धृतराष्ट्र से राजसूय-यज्ञ का वृत्तान्त संक्षेप में वर्णन करके, कहा,—"महाराज! आप के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन ने जब से यह यज्ञ देखा है, तबसे दिनों-दिन उदास और दुबले होते जाते हैं; दुर्योधन को कोई शारीरिक रोग नहीं है, वे मानसिक पीड़ा से कातर हैं ; दुर्योधन स्वभावतः अभिमानी हैं ; राजसूय-यज्ञ के निर्विघ्न

संसाप्त होने पर युधिष्ठिर को जो सम्मान मिला है, उसको देख कर वे अपनेको अपमानित समझ रहे हैं; उनका ऐसा समझना उचित भी है। राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान सम्राट् ही कर सकता है। युधिष्ठिर ने, वह यज्ञ करके, अपनेको सम्राट् सिद्ध कर दिया है! इस से दुर्योधन की मानहानि हुई है। दुर्योधन युधिष्ठिर को अपना शत्रु समझते हैं। वे उनको शत्रु कैसे नहीं समझ सकते? नीति के जाननेवालों ने समीपवर्ती भूपालों को परस्पर का शत्रु कहा है। दुर्योधन के राज्य की सीमा के बाद ही जब युधिष्ठिर का राज्य है, तब दोनों का परस्पर वैर-व्यवहार स्वभावतः अपरिहार्य्य है; और युधिष्ठिर ने जब दुर्योधन के ही राज्य का आधा हिस्सा लिया है, तब वे आपके पुत्र के सहज शत्रु हैं। शत्रु को उन्नत और सम्मानित देखकर लोग आपको अवनत और अपमानित समझेंगे। विशेषतः, मानधनी की मानहानि, अन्तस्ताप और मनःक्षोभ का कारण होती है। क्षुब्धचित्त-संतप्त व्यक्ति अपनी देहको दुर्वह भार समझते हैं, और आत्महत्या को महापाप नहीं समझते; इसलिए आत्महत्या से पराङ्मुख नहीं होते। दुर्योधन का ढँग देखकर यही आशङ्का बलवती हो रही है। उनका अनिष्ट होने पर, आपके कष्ट की सीमा न रहेगी; शास्त्रकारों ने ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा ही पिता को पुत्रवान कहा है। अतएव दुर्योधन का यदि कुछ अमङ्गल हुआ, तो वृद्धावस्था में आपका जीवित रहना विडम्बना-मात्र हो जायगा। अत-

एव आप पुत्र की भलाई के लिए, द्यूतक्रीड़ा में युधिष्ठिर को बुलाइये; युधिष्ठिर आपकी बात बिना माने नहीं रहेंगे; आपके बुलाने पर वे आकर अवश्य जूआ खेलेंगे। मैं कपटपूर्ण क्रीड़ा से उनका सर्वस्व जीत कर दुर्योधन को दे दूँगा। इस दवा के सिवा और किसी दवा से दुर्योधन का चिन्ताज्वर दूर नहीं हो सकता। वृहस्पति ने राज-व्यवहार को उपलक्ष्य करके नाना प्रकार का नीति-शास्त्र लिखा है। उस सबका यही सारांश है, कि चाहे जिस उपाय से हो, शत्रु को जीतना ही विजय की इच्छा रखने वालों का प्रधान कर्म है। उसमें धर्माधर्म का विचार नहीं है। शत्रु की सम्पत्ति आत्मसात् कर सकने ही से जयेच्छु राजा का उद्देश्य सिद्ध होता है। पुत्र का हित साधन तथा अहित-निराकरण करना ही पिता का कर्त्तव्य है। आप उसी कर्त्तव्य के अनुसार, युधिष्ठिर को द्यूत के लिए आमन्त्रित कीजिए; इससे मेरी मन्त्रणा सिद्ध होगी; नहीं तो दुर्योधन के जीवन में संशय हो जायगा।

राजा धृतराष्ट्र अपत्य-स्नेह के एकान्त वशीभूत थे। विदुर और अन्यान्य मन्त्रि-पुङ्गवों के साथ कुछ देर तक व्यर्थ वादानुवाद करके, अन्त में उन्होंने शकुनि की बातका ही अनुमोदन किया। उन्होंने इस बातकी ज़रा भी विवेचना नहीं की, कि अक्ष-व्यसन वैरतरु का अङ्कुर होगा। अन्धे राजा ने विदुरको, बड़े आग्रह के साथ, युधिष्ठिर को नियत समय पर द्यूत-क्रीड़ा

में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करने को इन्द्रप्रस्थ भेजा। इसके बाद राजमण्डल प्रवेशोचित विविध रत्न-मण्डित "तोरण स्फटिक नामक" एक रमणीय सभामण्डप बनाने के लिए शिल्पियों को आज्ञा दी और कौतुक देखने के लिये सामन्त तथा सामन्तेश्वरों को भी बुला भेजा।

विदुर के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर, राजा युधिष्ठिर ने उनका सविनय समयोचित सम्मान करने के उपरान्त, धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों का कुशल-समाचार पूछा। कुशलप्रश्न होने के बाद युधिष्ठिर ने विदुर के आने का कारण पूछा। विदुर ने राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों का अनामय और राज्य का कुशल-समाचार कहकर कहा,—"राजन्! महाराज धृतराष्ट्र ने जिस लिये मुझे भेजा है, सो सुनिये। उन्होंने कहा है,—'वत्स युधिष्ठिर! तुम्हारी मय-निर्मित सभा के समान 'तोरण स्फटिक नामक' एक सभा प्रस्तुत हुई है। तुम अपने चारों भाइयों के साथ आकर उसे देख जाओ और दुर्योधनादि के साथ मित्रभाव से यहाँ जूआ खेलो; तुम सब लोगोंको खेल-तमाशे में लगा देखकर, मेरे मनमें बड़ी ही प्रसन्नता होती है।' धर्म्म-राज! महामहिमाशाली धृतराष्ट्र अक्ष-विधान कर चुके हैं; आप वहाँ चलकर अक्ष-देवियों के साथ क्रीड़ा कीजिये, यही कहने के लिये यहाँ मेरा आना हुआ है।" युधिष्ठिर ने कहा—"महाशय! अक्ष,अकारण कलह और बन्धु-विच्छेद प्रभृति बहुत से दोषों का आकर होने के कारण, व्यसनों में गिना गया है।

क्या आप उसमें सम्मिलित होना पसन्द करते हैं ?" विदुर ने कहा—"यह मुझे ख़ूब मालूम है, कि पाशा कलह का घर है, केवल राजा धृतराष्ट्र के बहुत अनुरोध करनेसे ही मैं आपके पास आया हूँ। अब आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिये।"

राजा युधिष्ठिर ने विदुर की बात सुनकर मन-ही-मन सोचा, जूए के दोष जान-सुनकर भी उसमें सम्मिलित होना होगा, यह बड़ी भारी मूर्खता का काम होगा; और यदि उसमें नहीं सम्मिलित हूँगा, तो इस समय जो अक्ष का नियम प्रचलित है, उसको उल्लङ्घन करना पड़ेगा। पहली बात न्याय-विरुद्ध होने पर भी, समाज-विरुद्ध या अयशस्कर नहीं है; दूसरी बात समाज-विरुद्ध और अयशस्कर है। जो मनुष्य अपने यश की रक्षा करना चाहे, उसे समाज-विरुद्ध कर्त्तव्य नहीं करना चाहिये। विशेषतः इस विषयमें गुरुजनों का अनुरोध है, गुरु की आज्ञासे निन्दित कर्म्म करना भी नितान्त दूषणीय नहीं है। गुरु की आज्ञा पालन न करने से धर्म्म के सामने अपराधी और गुरु को असन्तुष्ट करने से अधर्म्मचारी होना पड़ता है; और प्राकारान्तर से माननीय विदुर का भी अपमान होगा। अतएव द्यूत-निमन्त्रण-रक्षा करना कर्त्तव्य है। यह स्थिर करके बोले—"महाशय! जब पूज्य-पाद धृतराष्ट्र ने आपके द्वारा मुझे बुलवाया है, तब गुरुकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।" इसके बाद राजा

युधिष्ठिर ने भाइयोंके साथ सलाह करके, परिवार सहित हस्तिनापुर की यात्रा की।

क्रमशः दिवावसान होने लगा; कुपित तोषित उग्र प्रभुके समान चण्डांशु का प्रचण्ड भाव तिरोहित होने लगा; आतपतप्त मारुत, शीतल होनेके लिये, मानों हिमालयकी ओर शीघ्रतासे दौड़ पड़ा; विच्छिन्न ज्वराक्रान्त मनुष्यके समान सभी पदार्थों का अङ्ग-प्रत्यङ्ग शीतल होने लगा; आतप-तापित तरुपल्लवोंने, रोगोन्मुक्त मनुष्यके समान, अपना म्लानभाव दूर कर दिया; कुसुम-कोरक सान्त्वनातुष्ट बच्चेके मुखके समान ईषत् विकसित हो गया; जिस प्रकार युवावस्थाके बाद विशुद्ध प्रौढ़ावस्था का उपक्रम होता है और ग्रीष्मके अन्तमें सुरम्य शरद्का आगमन होता है, उसी प्रकार मध्याह्नके बाद सुख-सेव्य अपराह्न-काल आ गया। उसी समय राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर पहुँचे, और दर्शनोत्सुक बान्धवोंसे परिवृत होकर सदालापके सुखमें वह दिन बिताया।

दूसरे दिन राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके आगे होकर, धूर्तोंसे सेवित सभामण्डपमें प्रवेश किया; और वहां यथेष्ट सम्मानित हो, वहाँ बैठे हुए राजाओंका यथाविहित सम्मान कर, अपने निर्दिष्ट आसन पर बैठ गये। चारों भाइयोंके अपने चारों ओर बैठ जाने पर, उन्होंने पञ्चातपकी पञ्चमाग्निकी शोभा धारण की। अनन्तर शकुनिने युधिष्ठिरको सम्बोधन करके कहा,—
"राजन! जूएके गुण अपरिसीम हैं, उन्हें उसके जाननेवाले

ही जान सकते हैं। जूएसे एक विषयमें बहुत देर तक चित्त निवेशित करनेकी शक्ति होती है; प्रतिक्षण उत्साह-शक्ति उद्दीपित होती रहती है; जिगीषावृत्ति बलवती हो जाती है; कौतूहलकी क्रमशः वृद्धि होती है; पासा फेंकनेके पहले हर्ष, दुःख, कोप, लोभ प्रभृति नाना भावों का आविर्भाव एक साथ होता है; गोटोंके चलानेसे विवेक-शक्ति बढ़ती है; दूसरे की चतुरता का सहसा ज्ञान होता है; स्वयं प्रतारित होना न पड़े, इसके लिये सतर्क रहना पड़ता है; स्वानुष्ठित कर्म्ममें उपदेशिनी उत्पन्नमति उपस्थित होती है; क्रीड़ा-नैपुण्य प्रकाशित होता है; अन्तःकरण प्रसन्नताके मारे नाचने लगता है; अपना दाव पड़ने पर जैसा आनन्द होता है, वैसा आनन्द एक साम्राज्य पाने पर भी नहीं होता। हे अक्ष-विशारद! इस सभामें बहुतेरे अक्ष-दर्शक महात्माओंका समागम हुआ है, सभी कौतूहलाक्रान्त होकर तुम्हारे आनेके फलकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अब विलम्ब करना उचित नहीं है; आओ, द्यूत-क्रीड़ा आरम्भ की जाय।"

राजा युधिष्ठिरने शकुनि को प्रसिद्ध कपटी खिलाड़ी जानकर, उसकी बातोंमें उपेक्षा दिखाते हुए कहा,—"राजन्! यद्यपि द्यूत आमोदकर है, किन्तु कूट क्रीड़ा आमोद का कारण होकर कलहका कारण हो जाती है। कपट की क्रीड़ा क्षात्रधर्म्मानुयायिनी या राजनीति-अनुगामिनी नहीं है; चाहे जहाँ कोई स्थान क्यों न हो, पर कापट्य-व्यवहार प्रशंस·

नीय नहीं है; और कपटी मनुष्योंके अन्यायाचारकी सामाजिक मनुष्य प्रशंसा नहीं करते; अतएव सामान्य क्रीड़ाके लिये अधर्म्म पथ का अवलम्बन करना कभी विधेय नहीं है। जो हो, तुम्हारी तारीफ़ करनेसे मैं द्यूत में सम्मिलित नहीं होता। महाराजकी आज्ञा और क्षात्रधर्म्मका नियोग होनेके कारण, यह कर्त्तव्य हो सकता है।" शकुनिने कहा,—"धर्म्मराज! आप अक्षके विषय में लघुहस्तता, कूट-अक्ष-विक्षेप प्रभृति अनेक प्रकार की इतिकर्त्तव्यतामें चतुर हैं; आपके सामने कपट-पूर्ण क्रीड़ा सम्भव-पर नहीं। किन्तु सुशिक्षिता अक्षदेवी अशिक्षितको क्रीड़ामें विजय-प्रदान करती हैं; दुर्बल शस्त्र-कुशल मनुष्य कौशलसे बलिष्ठ को मार सकता है, ऐसे स्थान पर शठता—शठता नहीं समझी जाती। यदि तुम मेरे साथ खेलनेमें डरते हो, तो द्यूत-क्रीड़ासे अलग होओ: सभामण्डपमें कौशल से धूर्त्त कहना, आप-जैसे साधु पुरुष के उपयुक्त नहीं है।"

युधिष्ठिरने लज्जावनत मुखसे कहा,—"राजन्! मैं जब द्यूतमें बुलाया गया हूँ, तो अब उससे अलग नहीं हो सकता, यह निश्चय जानिये; द्यूत-क्रीड़ासे भाग्यकी परीक्षा होती है; जो सौभाग्यशाली होता है, उसकी जय होती है; जो सौभाग्य-शाली नहीं होता, उसकी पराजय होती है; इससे केवल आप ही की जय होगी, इसको कोई स्थिरता नहीं। जो हो, इस सभामें यदि दूसरा कोई खिलाड़ी आया हो, तो उसके

साथ खेल आरम्भ हो" इस बात को सुनकर दुर्योधनने कहा,—"पाण्डव-श्रेष्ठ! इस सभामें दूसरा कोई खिलाड़ी नहीं आया है, आप ही को प्रतिपक्षता अवलम्बन करनी होगी। इस द्यूतमें जय होगी तो मेरी और पराजय होगी तो मेरी। मामा शकुनि मेरे प्रतिनिधि होकर खेलेंगे। आप इन्हींके साथ खेलिये।" युधिष्ठिरने कहा,—"कौरव-श्रेष्ठ! दूसरे का प्रतिनिधि होकर खेलना, मेरे विचारमें सुसङ्गत नहीं मालूम होता। जो हो, अब खेल आरम्भ हो। इस बहुमूल्य मणि-मय हार को मैंने दाव पर रक्खा। तुम भी इसके बदलेमें अपने दाव पर रखनेके लिए कोई वस्तु लाओ।" दुर्योधनने कहा,—"बहुत अच्छा, यही अपना बहुमूल्य हार मैंने भी अपने दाव पर रक्खा। आप का दाव पड़ेगा, तो आप इसको ले लीजियेगा।" इस प्रकार दाव रखने पर अक्ष-तत्त्व-वेत्ता शकुनिने कौशलपूर्व्वक पासा फेंक कर जय लाभ किया। फिर युधिष्ठिरने बहुतसे रत्न दाव पर रक्खे, इस वार भी शकुनिकी ही जीत हुई। युधिष्ठिरने जिगीषा-परवश होकर, इस बार जीतूँगा, ऐसा समझकर और भी अधिक द्रव्य दाव पर रक्खे; इस वार भी उन्हीं की पराजय हुई। इस प्रकार वार-बार सुबलनन्दन शकुनिकी जय और युधिष्ठिरकी पराजय होने लगी; तथापि युधिष्ठिरने खेलना नहीं छोड़ा; बल्कि जीती हुई चीज़ों का उद्धार करने के लिये पूर्व्वापेक्षा अधिक-अधिक रत्नोंको दाव पर रखकर हारने लगे। अन्तमें सर्वस्व हार कर, द्यूतके उदार-उदरमें अर्पण कर

दिया। शकुनि बार-बार जय लाभ कर हुतहुताशनके समान प्रदीप्त हो उठा। राजा युधिष्ठिरने निर्वापित अङ्गारके समान मलिन भाव धारण किया।

अन्तमें सभी वस्तुओं पर अपना प्रभुत्व गँवाकर, राजा युधिष्ठिर व्याकुल चित्तसे सोचने लगे—"यदि मैं इस समय खेलना छोड़ देता हूँ, तो इस धूर्त्त-सभामें स्वार्थपरायण कुरु कार सभी मेरी निन्दा करने लगेंगे, और शकुनि भी उस दोष का उल्लेख करके समाजमें ही लज्जित करने लगेगा और हारी हुई चीज़ें भी हाथसे चली जायँगी। अतएव क्या चीज़ दाव पर रखकर हारी हुई वस्तुओंका उद्धार करूँ? इस विषयमें मुहूर्त्त-मात्र चिन्ता करके स्थिर किया, कि इस समय अपने भाइयों और आत्माके ऊपर अपना प्रभुत्व है, अतएव इन्हींको दाव पर रखकर हारी हुई वस्तुओं का उद्धार करूँगा। यह निश्चय करके बोले,—"राजन्! इस बार अपने प्राणोपम सहोदर भीमसेनको मैं दाव पर रखता हूँ। यदि इस बार मेरा दाव पड़ा, तो अपनी सभी हारी हुई वस्तुओं पर मेरा पूर्ववत् अधिकार हो जायगा और यदि हार जाऊँगा, तो ये दासत्व-बन्धन में आबद्ध रहेंगे।" इस बात पर शकुनि सहमत हुआ, और उसने होशियारीसे पाशा फेंककर इस बार भी जयलाभ किया। युधिष्ठिरने पूर्व रीतिसे इस बार अर्जुनको दाव पर रक्खा। भाग्यदोष से वे भी शकुनिके दासत्व-बन्धनमें बँध गये!

राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों को प्राणों की अपेक्षा भी

प्रियतर समझते थे, उन लोगों को सुख-स्वच्छन्दता बढ़ानेके लिये सदा सचेष्ट रहते थे, और उन लोगोंको सुखी देखकर अपने को सुखी समझते थे। फलतः जिन सब गुणोंसे ज्येष्ठ पितृसम समझा जा सकता है, और जैसा व्यवहार करनेसे शास्त्र-निर्दिष्ट गुणवान् ज्येष्ठ की उपाधि मिल सकती है, राजा युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयोंके साथ वैसाही व्यवहार करते थे। उनके छोटे भाई भी उनके ऐसे भक्त, इतने अनुरक्त, इतने वशंवद थे, कि उनकी आज्ञा का पालन और उन्हें सन्तुष्ट करने में प्राणपणसे चेष्टा करते थे। जिस प्रकार पितृप्रिय पुत्र, पिता मुझे अधिक प्यार करते हैं, यह समझते हैं; उसी प्रकार ज्येष्ठ-प्रिय कनिष्ठ भ्राता भ्रातृ-वत्सल अग्रजको समझते थे। कितने ही विवाह करके सहोदर-स्नेह विध्वंसिनी कामिनी की बातोंसे, स्वभाव-सिद्ध सोदर-सद्भाव त्याग कर भ्राताओंको शत्रु समझने लगते हैं; किन्तु पाण्डवोंके सौभ्रातृ गुणकी इयत्ता नहीं थी। इन पाँचों भाइयोंने एकमात्र सुन्दरीका पाणिग्रहण कर थोड़ी देर के लिये भी एक दूसरे को अपना शत्रु नहीं समझा और उनका वह बहुमूल्य सौभ्रातृ-स्वर्ण सम्पत्ति आपद्रूप कसौटी पर रगड़ा जाकर विशुद्धरूपसे परीक्षित हुआ। जो बड़े भाई की आज्ञा से प्राणपण कर सकते हैं, उनके निकट दासत्व-बन्धन कोई बड़ी बात नहीं।

राजा युधिष्ठिर अपने दोनों भाइयों को अपने दोष से विपन्न देखकर मृतक प्राय: होकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगे,

अब मैं क्या करूँ? जिसको दाव पर रखकर जय की आशा करता हूँ, उसीसे निराशा होती है : सारी धन-दौलत हार गया हूँ, उससे मुझे कोई कष्ट नहीं होता; किन्तु अपने दोनों भाइयों को मरण-अपेक्षा क्लेशकर दासत्व-शृङ्खलामें आबद्ध किया है, इसीसे मेरा अन्तःकरण यन्त्रणानल मे दग्ध हो रहा है। मैं किस उपायसे उनलोगोंको दासत्व-बन्धनमे मुक्त करूँ? सम्प्रति, नकुल सहदेवको छोड़कर दाव पर रखनेके लिये मेरे पास और कोई सम्पत्ति नहीं है : किन्तु जिस प्रकार मेरी हार हो रही है, उससे इन लोगों को दाव पर रखनेकी हिम्मत नहीं होती। इन लोगों को बिना दाव पर रक्खे भी तो काम चलता नहीं दीखता। और किसी उपाय से भीम और अर्जुन के बन्धन-मुक्त होने की उम्मीद नहीं दीखती। किन्तु : यदि कहीं इनलोगोंको भी हार गया, तब तो न भीम और अर्जुन-काही दासत्वसे छुटकारा होगा, और न हारी हुई चीज़ें ही लौट सकेंगी; केवल इन लोगोंको भी सदाके लिये दुःख-समुद्रमें डाल दूँगा। इस प्रकार आगा-पीछा करके अन्तमें सोचा, कि इन दोनों भाइयों को भी यदि दाव पर नहीं रक्खूँगा, तो लोग यह समझेंगे, कि सभी भाइयों पर इनका बराबर स्नेह नहीं है, और भीमार्जुन भी मन-ही-मन असन्तुष्ट हो सकते हैं : यह सोचकर युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको भी दाव पर रख दिया। सदा सुखमेंही लालित-पालित हुए नकुल और सहदेवको भी दाव पर रखते ही शकुनिने जीत लिया। वे

दासत्व-बन्धनमें फँस कर कुछ भी दुःखित नहीं हुए; बल्कि सहोदरके समव्यवहारसे सन्तुष्ट हुए।

आशा कैसी दुरत्याज्या वृत्ति है! उसकी कैसी सुखदायिनी क्षमता है! कैसी चमत्कारिणी शक्ति है! मुमूर्षु मनुष्य ऐहिक आशा परित्याग करनेके समय भी पारत्रिक सुखकी लालसा करता है, चिर-रोगी होकर भी वांछा-मात्र सुखके अभिलाषसे मनुष्य सुखी होता है और बारम्बार प्रतारित होने पर भी खिलाड़ी खेलमें सर्वस्व गँवा देता है! उसकी ऐसी ही सम्मोहिनी शक्ति है, कि उसका प्रत्यक्ष दोष देखने पर भी खिलाड़ी पुनर्वार उसको अनुष्ठान-कर्त्तव्य समझ कर विमुग्ध होता है। राजा युधिष्ठिर इसी प्रकार की विजय-लालसामें सर्वस्व समर्पण करके सोचने लगे,—"पापात्मा की अपेक्षा दासात्मा अत्यन्त जघन्य है; पापात्मा धर्म्मका अनुष्ठान न करनेके कारण उसके फलसे वञ्चित रहते हैं; दास-स्थानीय आत्मा, धर्म्म का अनुष्ठान करके भी, प्रभु की परतन्त्रता से, उस फलका अधिकारी नहीं होता; पापात्मा अनेक विषयोंमें स्वाधीन रहता है; दासात्मा सभी विषयोंमें पराधीन रहता है; आत्माको दास बनाना और और आत्माको बेचना दोनों समान अपराध हैं; जो आत्मा को दाव पर रखकर हार सकता है, वह आत्मद्रोही हो सकता है। किन्तु यह सब पहलेही सोच लेना चाहिये था। जब मृत्यु की अपेक्षा भी अधिक क्लेशकर किङ्कर-कर्म्ममें भाइयोंको लगा दिया, तब मुझसे न हो सके, ऐसा काम मेरे लिये अब कोई

न रहा। विचार कर देखने से ये भ्राता आत्माके एक अंश हैं। जब आत्मा का अधिक अंश दास हो गया है, तब पञ्चम अंश के दास न होने पर भी, पश्चात्ताप से वह दासता का कष्ट भोग करेगा। यदि केवलमात्र आत्म-हितेच्छासे आत्मा को दाव पर न रक्खूँगा तो, जन-समाजमें स्वार्थी कहा जाकर मैं अपने तईं अश्रद्धा-पात्र और क्षमता रहते भी भाइयोंका उद्धार करनेमें पराङ्मुख समझा जाकर निन्दाका भाजन बनूँगा। यदि अपने तईं दाँव पर रखकर भ्राताओंको बन्धनसे छुड़ानेमें सफलता न पा सकूँगा, तो स्वयं दास होकर भी, भ्राताओं तथा जन-समाजके समक्ष लज्जित तो नहीं हो सकूँगा ; और जो कहीं मेरी जीत हो गयी, तो जितनी वस्तुएँ मैं हार गया हूँ, उन सब पर मेरा फिरसे अधिकार हो जायगा। बारम्बार मेरी ही हार होगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं : अतएव इस-बार विशेषरूपसे मैं अपने भाग्य की परीक्षा करूँगा। इस प्रकार साहस के ऊपर निर्भर हो उन्होंने कहा,—"राजन् ! इस बार मैं अपने तईं दाँव पर रखकर खेलूँगा; यदि जीत सका, तो हारी हुई सभी चीज़ें तथा अपने भाइयों को वापस ले लूँगा ; अन्यथा इस पवित्र आत्माको भी दासत्व-बन्धनमें आवद्ध कर दूँगा।" शकुनिने इस बातसे सहमत हो पासा फेंका; इस बार भी उसीका दाँव पड़ा। राजा युधिष्ठिर परा-भव-वश आत्मा सहित समुदय सम्पत्ति हार कर निस्तेज हो गये। किन्तु जीतने की इच्छा उस समय तक भी उनके हृदय

से दूर नहीं हुई। युधिष्ठिर सोचने लगे, कि यदि कोई वस्तु अजेय हो, तो उसीको दाव पर रखकर फिर एक बार खेलकर देख लूँ।

शकुनि मुस्कराता हुआ बड़ी प्रसन्नताके साथ सोचने लगा, मेरा मनोरथ और मन्त्रणा सिद्ध हो गयी; भाञ्जोंका मैंने बड़ा उपकार किया; प्रधान शत्रु दास-भावापन्न होकर उन-लोगोंके पदानत हो गये हैं; किन्तु शत्रुओंकी पूरी बुराई करने पर भी मन को भली भाँति सन्तोष नहीं होता; इन-लोगोंका जितना ही अधिक अपकार हो सकेगा, उतनीही अधिक हृदय की शान्ति मिलेगी। अब इनकी कोई ऐसी बुराई करनी चाहिये, जो सदा के लिये स्थायी और कलङ्करूप से ख्यात हो। जातिगत और भार्यागत अपकार चिरस्थायी तथा अविनश्वर कलङ्क है; जातिगत अपकार करने से कौरव और पाण्डव दोनों एक कुलके हैं, इससे दोनों का कलङ्क बढ़ेगा; अतएव इसे छोड़कर पाण्डवोंका वनितागत अपकार करना कर्त्तव्य है। द्रौपदी पाण्डवोंकी बड़ी प्यारी भार्या है, उसके कलङ्क से उन सबका अपकार होगा; भार्याके कलङ्क से वे सबके सामने सङ्कुचित होंगे, मर्मान्तक कष्ट भी पावेंगे, और ऐसा होनेसे मेरी भी मनोकामना पूरी होगी। ऐसा सोच-विचार कर हर्षोत्फुल्ल लोचनोंसे उसने कहा,— "राजन्! किसी प्रकार की अजेय वस्तुके रहते, अपने तईं दाँव पर हार कर आपने अनुचित काम किया है। इस समय भी

आप चाहें, तो अपने छुटकारे का उपाय कर सकते हैं।
शास्त्रकारोंका कहना है, कि आपद्से अपनेतईं छुड़ानेके लिये
धनकी रक्षा करनी चाहिये; धन-द्वारा भार्याकी रक्षा करनी
चाहिये; धन और भार्यासे अपनी रक्षा करनी चाहिये
समय आपके पास धन नहीं है, भार्या है: भार्याके ऊपर उसके
पतिका पूर्ण अधिकार होता है; अतएव भार्याको दाव पर रख
कर, आत्म-दासत्व मोचनकी चेष्टा करना सर्वथा उचित मालूम
होता है।"

शकुनिकी बात सुनकर युधिष्ठिरका चित्त चञ्चल हो गया।
एक बार उन्होंने सोचा, आत्मत्राण न करना महापाप है; फिर
सोचा, आत्माकी अर्द्धाङ्गस्वरूपा स्त्रीको दाव पर रख कर परा-
जित होना भी तो सामान्य पातक नहीं है; सुतप्रसविनी गाय
को विपद्में डालकर, ब्राह्मणकी रक्षा करनेके समान विषम
सङ्कट उपस्थित है; फिर भी, ऐसा न करूँ तो क्या करूँ? मङ्गल
परम्पराका भोक्ता और धर्म्म परम्पराका अनुष्ठाता है, किन्तु आत्माके
अवसन्न होने पर सभी वृथा हैं; और पराधीन जीवन धारण
करनेका प्रयोजन ही क्या है? एक बार सोचा,—पुरुषके दास-
भावापन्न होनेपर, उसकी वनिताका दासत्व-भाव विचार-सङ्गत
है, तो इसको क्या कह कर दाव पर रखूँगा? फिर सोचा,—
दावपर रखना प्रधान कर्त्तव्य है। अङ्गीकार, बात और विश्वास
के ऊपर निर्भर रहता है। द्रौपदी दावपर नहीं रखी गई
है, इस कारण अभी द्रौपदी पराजित नहीं हुई है; और द्रौपदी

को दाव पर रखनेसे अन्यान्य भ्रातृ-जायाओंका छुटकारा हो सकता है; सम्भवतः, सौभाग्यसे, समस्त हारी हुई वस्तुओंका उद्धार हो सकता है; अतएव ऐसा सुयोग परित्याग करना उचित नहीं है।

इसी समय शकुनिने कहा—"धर्म्मराज! अब क्यों सोच कर रहे हो? आत्माका मोचन करना प्रधान कर्त्तव्य है; न करनेसे धर्म्मके सामने आपको अपराधी होना पड़ेगा; आप सदासे धर्म्मकी सेवा करते आते हैं; इस समय, आपद कालमें, आप धर्म्म पर अपनी श्रद्धा क्यों कम कर रहे हैं? कितनेही ऐसे काम हैं, जिनका बिना स्त्रीके साथके भली भाँति अनुष्ठान नहीं होता; भार्या उन्हीं धर्म्मानुष्ठानोंकी सहकारिणी होनेके कारणही सहधर्म्मिणी कही जाती है। शास्त्रकी मीमांसा जानकर, जब आप स्त्रीको दाव पर रख कर आत्म-निष्कृति की चेष्टा नहीं करते, तब मालूम होता है, कि आपके निकट धर्म्मके गौरवकी अपेक्षा सहधर्म्मिणीका गौरव अधिक है। जो पुरुष स्त्रैण होते हैं, वेही सर्वापेक्षा पत्नीका आदर अधिक करते हैं; और बिना उसकी सम्मतिके उसके विरुद्ध कोई काम नहीं करते। यदि आप कर्त्तव्यानुष्ठानसे भीत हो रहे हैं, तो आप उनकी राय लेकर उन्हें दाव पर रख सकते हैं; नहीं तो सदाको अपने तईं दासत्वकी शृङ्खलामें आबद्ध रखिये।"

राजा युधिष्ठिर खेलमें इस प्रकार उन्मत्त हो रहे थे, कि शकुनिकी चालाकी उनकी समझमें कुछ भी न आयी;

बारम्बार पराजित होनेसे इतने क्रोधित हो गये थे, कि उनकी विवेक-शक्ति एक बार ही तिरोहित हो गयी; इसके सिवा शकुनिकी असह्य वाक्य-यन्त्रणासे इतने अस्थिर हो गये, कि किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो, उन्होंने शेषमें द्रौपदीको दाव पर रख ही दिया।

द्रौपदीको दाव पर रखनेकी बात सुनकर, सभामें बैठे हुए सभी वृद्ध राजा युधिष्ठिर को "धिक्कार है!" "धिक्कार है!!" कहने लगे; भीष्म द्रोण प्रभृति महानुभावोंके शरीरसे पसीना निकलने लगा; विदुर अपना मस्तक अवनत करके इसका परिणाम सोचने लगे; कर्ण, दुःशासन प्रभृति दुर्योधनके हितैषी शकुनिके पाशा फेंकनेकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे: दुर्योधन द्रौपदीके विजित होने पर जो करना होगा, उसे सोचने लगा; अन्धे राजा "क्या जीत हो गयी?" "क्या जीत हो गई?" बारम्बार यह बात पूछकर अपने आसपास बैठे हुए लोगोंको विरक्त करने लगे। इसी समय शठ-शिरोमणि शकुनिने, - "यह जीता", कह कर चालाकीसे पाशा फेंका: पासेने अनुकूल दैवके समान उसीको जीत करा दी। शकुनिकी जय-घोषणा सुनकर कुरुपक्ष विकसितानन, और पाण्डवपक्ष म्लान-वदन हो गया। उस समय सभाने एक ओर विकसित कुमुद और दूसरी ओर मुदित कमल सहित सायंकालीन तालाबकी शोभा धारणकी।

दूसरा परिच्छेद ।

द्रौपदीका वस्त्रहरण ।

भीमकी भीषण प्रतिज्ञा ।

दुर्योधनने मामाकी बात सुन कर प्रसन्नताके साथ गर्व-पूर्ण शब्दोंमें कहा—"विदुर! तुम शीघ्रही पाण्डवोंकी प्यारी याज्ञसेनी को सभामें ले आओ; अभागिनी द्रौपदी अब दासीके समान हमलोगोंकी सेवा करे!" विदुरने क्रोधके साथ कहा—"अरे मूढ़! तेरी मृत्यु आगई है, इसीसे ऐसी बातें बढ़-बढ़कर बोल रहा है; शृगाल होकर सिंहको कुपित कर रहा है; तुझे यह बात विदित नहीं है, कि तेरे पास ही काला नाग है। द्रुपदराज-नन्दिनी दासी होनेके योग्य नहीं है; राजा युधिष्ठिर उसको दाव पर रखनेके अधिकारी नहीं हैं; तूने इस जूएके द्वारा सर्वनाशक वैर उत्पन्न किया है। रोगी जिस प्रकार निषेध न सुनकर, अपथ्य सेवन करके, जीवनसे हाथ धो

बैठता है, उसी प्रकार तूने भी उपदेश को बात न सुनकर, जूएके बहाने आत्म-नाशका पथ परिष्कृत किया है। मर्म्म-पीड़ा करनेवाली बात किसीको कहना उचित नहीं; जिसको लक्ष्य करके बुरी बातें कही जाती हैं, वही उनसे विरक्त होता है, यह नहीं; किन्तु सुनने वाले भी बुरी बात कहने वाले के ऊपर असन्तुष्ट हो जाते हैं, और उसको घमण्डी समझने लगते हैं; ऐसा दुर्वाक्य बोलनेमें तेरी कोई भलाई नहीं है, बल्कि अपकारकी ही सम्भावना है। जातिवालोंके साथ सद्‌भाव रखना ही अच्छा है; असद्‌भाव रखनेसे अनेक अनर्थ होते हैं; जाति-कलहसे न हो सके, ऐसा कोई अपकार नहीं है। विना एक पक्षका नाश हुए जाति-विरोध दूर नहीं होता; अतएव शान्त होकर मेरा उपदेश सुन,—पाण्डवोंके साथ सौहार्द रख; अन्तमें सुखी हो सकेगा।"

दुर्योधनने कहा,—"निर्लज्ज विदुर! तुम्हें धर्म्मसे भी कुछ भय नहीं है; तुम जो अपने प्रतिपालक की निन्दा करते हो, उसे अधर्म्म नहीं समझते! बातकी भाव-भङ्गी देखकर मनुष्य शत्रु या मित्र समझा जाता है; रसनाके दोष-गुण से मनुष्य अमित्र या मित्र कहा जा सकता है; तुम्हारी दुष्ट रसना तुम्हारे दुष्ट स्वभावको व्यक्त कर रही है। तुम हम-लोगोंकी भलाई नहीं देख सकते; सर्वदा पाण्डवोंकीही हित-चिन्तामें लगे रहते हो; उन लोगोंका अनिष्ट देखकर तुम्हें कष्ट होता है; मैं तुमसे परामर्श या उपदेश लेना नहीं

चाहता ; भविष्यमें कड़ी बातें कह कर हम लोगोंका भूल कर भी अपमान मत करना!" इस प्रकार विदुरका तिरस्कार कर के, दुर्योधनने सभामें बैठे हुए प्रातिकामीसे कहा—"प्रातिकामि! तुम शीघ्रही द्रौपदीको सभामें ले आओ; तुम्हें पाण्डवों से अणुमात्र भी भयकी सम्भावना नहीं है। विदुर डरकर ही हमलोगोंसे ऐसी-ऐसी बातें कह रहे हैं। विशेषतः, ये हमलोगोंकी उन्नति देख नहीं सकते।"

सारथी प्रातिकामीने दुर्योधनकी आज्ञासे द्रौपदीको लानेके लिये प्रस्थान किया। जाते समय युधिष्ठिर की ओर देखकर मन-ही-मन सोचने लगा,—जो जन्मसेही किसीसे विद्वेष न करनेके कारण अजातशत्रु नामसे प्रसिद्ध हैं; जो जन्मसे लेकर अबतक सत्यके सिवा कभी असत्य नहीं बोले, और इसीलिये जिनका नाम सत्यसन्ध भी है; जिन्होंने धर्म्मके सिवा कभी कोई अधर्म्मका काम नहीं किया, इसीलिये जिन्हें धर्म्मराजकी पदवी मिली है; जिन्होंने इस समय भी कपट-द्यूतमें प्रतारित होकर धर्म्मके खयालसेही सर्वस्व परित्याग कर दिया है, हाय! मैं ऐसा बड़ा हतभाग्य हूँ, कि उन्हीं महात्माका अप्रिय काम करनेके लिये जा रहा हूँ! कितने दुःखकी बात है! सेवा कैसी चित्त-संतापिनी वृत्ति है। सेवकमें धर्म्म-अधर्म्मका विचार करके चलनेकी सामर्थ्य नहीं; प्रभुता उसकी स्वाधीनताको नष्ट कर देती है। प्रभुकी आज्ञाही उसके लिये गुरुका उपदेश है; प्रभुका कार्य्य-सम्पादन करनाही उसका एकमात्र कर्त्तव्य और धर्म्माचरण है।

महारानी द्रौपदी प्रमोदभवनमें राज-महिलाओंके बीचमें बैठ कर, अनेक प्रकारकी बातोंमें सुखसे समय बिता रही थीं। महिलाओंने उनसे बड़े आग्रहके साथ पूछा,—"महिषि! ये सब अदृष्ट-पूर्व्व कपड़े और गहने आपने कहाँ पाये?" द्रौपदीने कहा,—"आर्यें! ये कपड़े और गहने राजसूय-यज्ञके समय दिक्पालोंने कृपाकर अर्पण किये थे। खाण्डव-वन-दहनसे परितृप्त होकर हुताशनने ये वस्त्र दिये थे; यह कपड़ा न तो जलमें सड़ता और न आगमें जलता ही है; इसमें एक और आश्चर्य्यजनक चमत्कारक गुण है, कि यह अङ्गमें लिपटा रहने पर अलग नहीं होता और खींचने पर इसकी लम्बाई बढ़तीही जाती है। यह जो मणियोंका बना हुआ कण्ठा-भूषण आप लोग देख रही हैं, इसे धनेश्वर कुवेरने उपहार-स्वरूप समर्पण किया है; यह अम्लान अरविन्दकी माला जलेश्वर वरुणने भेंटमें दी है; यह हीरक-खचित कुण्डल देवेश्वर इन्द्रने यौतुक-स्वरूप दिया है; और यह पद्मराग-जड़ित हरिन्मणि-गुम्फित कवरी-बन्धन राक्षसेश्वर विभीषणने प्रदान किया है; अन्यान्य आभरण अपने-अपने राज्य के उत्कृष्ट द्रव्य समझ कर अन्यान्य राजाओंने दिये हैं।"

द्रौपदी इसी प्रकार अपने सौभाग्यका गर्व कर रही थी। इसी समय प्रातिकामीने पहुँचकर कहा,—"द्रुपद राज-नन्दिनी! नौकर अपने स्वामीकी आज्ञामें रहनेवाला है; प्रभु जो आज्ञा दें, दास उसको अच्छे-बुरेका विचार किये बिनाही

करता है। जब मैं नौकर हूँ, तब मुझे स्वामीकी आज्ञा पालन करनी ही पड़ेगी; प्रभुका आदेश एकान्त कठिन और नितान्त अप्रिय होनेपर भी, विचारके साथ उसका पालन करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है; अतएव देवि! मैं जो निवेदन करता हूँ, उसे प्रभु-कृत समझ कर मेरा अपराध क्षमा कीजियेगा। महिषि! आज सभामें जो विषम दुर्घटना घटी है, उसको कहनेमें मेरी ज़बान लड़खड़ाती है, गला भर आता है। राजा युधिष्ठिरने जूएमें आपको दांव पर रक्खा और राजा दुर्योधनने आपको जीत लिया है। इस समय आपको राजा दुर्योधनकी गृह-दासीका काम करना पड़ेगा; मैं आपको राज-सभामें ले चलनेके लिये यहाँ आया हूँ। यही राजाकी आज्ञा है। अनेक चाकरोंके रहते हुए भी, मैं हतभागा हूँ, इसीसे इस अविचार्य्य कार्य्यका भार मेरे ही ऊपर सौंपा गया है।" यह कहकर वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। इस बातको सुनकर द्रौपदी अत्यन्त विस्मित हुई और थोड़ी देर मौनावलम्बन करनेके बाद बोली,—"सूतनन्दन! मुझे मालूम होता है कि तुम प्रलाप कर रहे हो! अबतक तो किसी भी राजपुत्रने धर्म्म-पत्नीको दावपर रख कर द्यूत-क्रीड़ा नहीं की; क्या धर्म्मराजके पास दाव पर रखने के लिये और कोई वस्तु ही नहीं थी?"

प्रातिकामीने कहा—"राजनन्दिनि! धर्म्मराज मणि, मुक्ता, स्वर्ण, रजत, वाहन, यान, भू-सम्पत्ति सबको दावपर रखकर हार चुके; तब भाइयोंको, इसके बाद अपनेको और अन्तमें तुम्हें दाव

पर रख कर पराजित हो गये। इस समय तुम सभी महाराज दुर्योधनकी आज्ञाके अधीन हो; क्षात्रधर्म्मानुसार तुम सभी लोगोंके ऊपर महाराज दुर्योधनका प्रभुत्व हो गया है। द्रौपदी प्रातिकामीके मुखसे दावकी बात सुनकर प्रत्युत्पन्नमतित्व-पूर्व्वक बोली,—"सूतनन्दन! तुम जाकर सभामें बैठे हुए धर्म्म-राज से पूछ आओ, कि वे पहले अपने तईं या मुझे दावं पर रख कर पराजित हुए हैं? यह बात पहले पूछ आओ, तब मुझे वहाँ लेचलना। यदि वे पहले मुझे दाव पर रखकर हार चुके होंगे, तब तो मैं सभामें चलूँगी।"

धर्मराज प्रातिकामी के मुख से द्रौपदी की बात सुनकर थोड़ी देर तक चुप-चाप बैठे रहे; उसके बाद भी उनके मुख से कोई बात न निकली; तब दुर्योधन ने कहा—"हे प्रातिकामि! तुम द्रौपदी को यहाँ ले आओ। यदि उसको कुछ आपत्ति हो,तो वह यहीं आकर उसकी मीमांसा कर ले। सभा में जितने लोग बैठे हैं, वे सभी उसका और युधिष्ठिर का प्रश्न सुनकर मीमांसा कर देंगे।" प्रातिकामी ने "जो आज्ञा महाराज!" कह कर चिन्तापरायणा द्रौपदीके समीप उपस्थित होकर कहा,—"राजनन्दिनि! धर्मराजने तुम्हारे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। मानधनी दुर्योधन ने तुम्हें सभा में ले चलने के लिये मुझे फिर भेजा है। मुझे जो आज्ञा हुई है वह सदाचार, लोकाचार और कुलाचार के विरुद्ध है। इस से कुरुकुल के निर्मूल होने के लक्षण नज़र आते हैं। द्रौपदी

ने कहा,—"दैवदुर्विपाक-वश ऐसी घटना घटी है। जो हो, धर्म्म ही सार पदार्थ है ; हम लोग उसी धर्म की रक्षा करेंगे ; इससे हम लोगों के भाग्यमें जो बदा हो सो हो; उससे मैं दुःखी न होऊँगी ; धर्मपथ पर चलने में यदि दुःख भी हो, तोभी मैं उससे प्रसन्न हूँ। सूतनन्दन! तुम फिर सभा में जाकर सभासद महाशयों से मेरे प्रश्न की मीमांसा पूछ आओ। मैं उन्हीं लोगों के उपदेश के अनुसार चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। मैं द्रुपद-राजाकी कन्या, महाराज पाण्डु की पुत्रवधू और महावीर पाण्डवों की सहधर्मिणी होने के कारण, भीष्म प्रभृति महारथियोंसे भरी सभा में उपस्थित होनेमें लज्जा या अपमान नहीं समझती।"

इसके बाद प्रातिकामी ने द्रौपदीके प्रश्नको सभ्यों के समीप निवेदन करके कहा—"महानुभावगण! पराजित राजा युधिष्ठिर द्रौपदी को दाव पर रखने के अधिकारी हैं या नहीं, और उनके दाव पर रखने से द्रुपद-कन्या वास्तव में पराजिता हैं या नहीं? इस प्रश्न की मीमांसा सुनकर, द्रुपद-तनया सभा में आवेंगी।" सभ्यों ने इस बातको सुनकर सिर नीचा कर लिया और दुर्योधन के शासन-भय से इसका किसी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया; तब धर्म्मराज ने दुराचारी दुर्योधन की दुरभिसन्धि समझ कर द्रौपदीके निकट दूत भेजकर कहला दिया कि, द्रौपदी रोती हुई अपने श्वसुरके सामने आवे; वह अपने तईं कुल-वधू समझ सभाके बीच आनेमें कुण्ठित

न हो। दूत द्रौपदीके भवनको चला गया ; पाण्डवों का मुख मलीन हो गया। दुर्योधन ने दासभावापन्न युधिष्ठिर की बात से स्व-गौरव की हानि समझ कर, तर्ज्जन-पूर्वक प्रातिकामीसे कहा,—"तुम शीघ्रही द्रौपदीको मेरे सामने ले आओ: उसको जो आपत्ति होगी, उसकी मीमाँसा मैं स्वयं यहाँ कर दूँगा। दूतकी बातोंसे उसके यहाँ आने की इच्छा नहीं दीखती। प्रातिकामी कुलाचार से अभिज्ञ था; उसने कुलाचार की रक्षाके लिए फिर सभासदोंसे पूछा,—"महोदय-गण! पूछने पर मैं द्रौपदी से क्या कहूँगा?" दुर्योधन ने यह सुन, लाल-लाल आँखें कर, विरक्तिके साथ प्रातिकामी का तिरस्कार करके दुःशासनसे कहा,—"भाई! प्रातिकामी लघुचेता और क्षुद्राशय है। वह भीम के डरसे केवल छल करके समय व्यतीत कर रहा है। तुम मेरे उपयुक्त अनुज हो: और दास-स्थानीय पाण्डवों से ज़रा भी भय नहीं खाते: अतएव तुम्हीं उस दासी को मेरे सामने ले आओ। क्या दासी की आपत्ति सुनने के योग्य है? उसकी आपत्ति सुनने पर उसको प्रश्रय देना होगा।"

दुर्म्मद दुःशासनने भ्राताका आदेश सुनतेही अत्यन्त शीघ्रता-पूर्वक जहाँ द्रौपदी बैठी थी वहाँ जाकर कहा,—"अयि द्रौपदी! तुम्हारे स्वामी तुम्हें दाव पर रख कर हार चुके हैं, इस समय तुम अपने स्वामी के अधीन नहीं हो। अब तुम हम लोगों के वश में हो गई हो; अतएव तुम सभा में चलकर राजा

दुर्योधन की सेवा करो।" द्रौपदी दुःशासन की बात सुनकर और उसकी भावभङ्गी देखकर धृतराष्ट्रकी स्त्रियोंके बीचमें दौड़ कर चली गई। दुर्धर्ष दुःशासन ने उसको भला-बुरा कहते हुए, उसके पीछे-पीछे दौड़कर उसके बाल पकड़ लिये; और काँपती हुई, रोरुद्यमाना और जड़प्राया पाञ्चालीको खींचकर सभा में लेचला। द्रौपदी वाष्प-गद्गद् स्वरसे कहने लगी—"दुःशासन! मैं कुलाङ्गना हूँ, मुझे सभामण्डप में मत ले चल।" दुरात्मा दुःशासन ने औरभी दृढ़ता के साथ उसके बाल खींच कर कहा,—"जब जूए में तुम्हें जीत चुका हूँ, तब तुम्हारे साथ दासी के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है वैसाही व्यवहार करूँगा। क्या दासी का भी सभा में जाना उसके लिए मानहानिकर है?" यह कह कर सनाथा द्रौपदी को अनाथा के समान आकर्षण-विकर्षण और अवक्षेपण द्वारा क्लेश देने लगा और बाल पकड़ कर उसे सीधी सभा में ले आया।

भीम दुःशासन का अत्याचार देखकर कुपित हो उठे; और बड़े भाई की अनुमति पाने पर दुर्विनीति दुःशासन को समुचित दण्ड देंगे, इसी अभिप्रायसे बारम्बार अपने बड़े भाई की ओर उग्रदृष्टि से देखने लगे। जब अग्रज की ओर से कुछ भी संकेत नहीं हुआ; तब मन-ही-मन सोचने लगे, कि पिञ्जरबद्ध शार्दूलके सामने ही शृगाल व्याघ्री को पराभव करके जीवित है! मृगेन्द्रमहिषी केशरी के सामने ही जाल

में आक्रान्त हुई है। अब कोई भीम से भय नहीं करेगा; अब कोई अपने बड़े भाई के कहने में नहीं रहेगा; भार्या भी पति के बल का भरोसा नहीं करेगी: पति भी अब भार्या की रक्षा करने के लिए कोई प्रयास नहीं करेंगे; अब कोई कनिष्ठ होकर नहीं जन्मेगा; इस प्रकार सोचते-सोचते भीम अपनी लाल-लाल आँखें बन्द करके मस्तक अवनत करने लगे; किन्तु क्रोध का आवेग उनके अवनत मस्तक को बीच-बीच में उन्नत कर देने लगा।

उस समय आलुलायित-केशा, गलितवेशा, द्रुपद-दुहिता, केशाकर्षण से नितान्त निपीड़ित और एकान्त कुपिता होकर कहने लगी—"इस सभा-भवनमें बहुतेरे बहुदर्शी गुरुजन बैठे हुए हैं। ऐसे स्थान पर मुझे कुछ न कहना ही उचित था। यहाँ कुछ भी बोलनेसे कुलाङ्गनाओंके नियम-विरुद्ध कार्य होगा; किन्तु जब मेरा दुःख देखकर कोई कुछ नहीं बोलता, तब मैं बिना बोले कैसे रह सकती हूँ? विचार की प्रार्थनासे सबको सभा में उपस्थित होना पड़ता है। मैं भी अर्थिनी-भावसे विचार के लिये प्रार्थना करती हूँ। महोदयगण! आप लोगों ने मेरे प्रश्न की क्या मीमांसा की? देखिये, इस समय भी यह दुरात्मा मुझे घसीट रहा है! रे दुराशय दुःशासन! तू मुझे भरी सभा में दुःख दे रहा है; अभी तेरा सर्वनाश होगा! तू वीर-पत्नी का अपमान कर रहा है, इसीसे तू समझ ले कि, अब तेरी मौत बहुतही नजदीक है! तूने काले नागके सिरको

मणि पर अपना हाथ रक्खा है, विषम विषसे जीर्ण हो जायगा! तू ने हुताशनकी शिखा स्पर्श की है, तू अभी दग्ध हो जायगा! तू अबला का लज्जा-भूषण हरण कर रहा है, इस अपराध के लिये तू शीघ्र ही समुचित दण्ड पावेगा! धर्म्मराज धर्म्मपथका अवलम्बन कर बैठे हैं, इससे तू यह न समझ ले, कि तेरे इस अधर्म्माचरण को वीर पुरुष सह सकेंगे!

तेरे इस अन्यायाचार को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख कर भी जब कुरुवंशवाले तुझे निषेध नहीं करते हैं, तब मालूम होता है, कि इस विषय में उनकी भी अनुमति है। हाय! कुरुवंशवालों में दया नहीं, धर्म-ज्ञान नहीं, लोक-लज्जा का भय नहीं, और कुलकलङ्क की आशङ्का भी नहीं है! क्या भरतके कुल में कुल धर्म्म का व्यतिक्रम हो गया है? भरत-वंशवाले कुलाचार के विरुद्ध कुलस्त्री का केशाकर्षण देखकर जीभ तक नहीं हिलाते हैं! हाय! कितने कष्टकी बात है! क्या इस सभा में कोई क्षात्रधर्म्म का मर्म्म जानने वाला नहीं है? निरपराधिनी महिलाका केशाकर्षण देखनाही क्या क्षात्र-धर्म्म है? अन्याय होते देखकर मौन:भाव अवलम्बन करनाही क्या क्षत्रियों का कर्म्म है? जिनका बाहुबल दुःखियोंके त्राण के लिये सदा प्रस्तुत रहता था, क्या अब उनमें वह बाहु-बल नहीं रहा? पीड़ितों की पीड़ा निवारण करने के कारण जो सार्थक क्षत्रिय शब्द से पुकारे जाते थे, उनका क्या अब वह कर्म्म नहीं रह गया? यहाँ कितने ही वयोवृद्ध सभा में बैठ

कर सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं, पर यहाँ सुविचार न होने के कारण क्या सभा की श्री-हानि नहीं होती ? अथवा अकारण सभाभवन में अबला के प्रति असदाचरण हो रहा है, इस से क्या सभाकी गौरव-हानि नहीं हो रही है ? महारथी भीष्म, महातेजस्वी द्रोणाचार्य्य, महामति विदुर प्रभृति भी जब सत्व-हीन और हीन-प्रताप के सदृश लोक-व्यवहार-विरुद्ध समाज-विगर्हित असदाचार की उपेक्षा कर रहे हैं; तब समझ गयी, पीड़ितों की कातर-ध्वनि से बधिर हो जाना ही इन सभासदों का कर्त्तव्य है। इस प्रकार आक्षेप कर कोप-कम्पित-कलेवरा वीर-वनिता सजल नयनों से अपने स्वामियों की ओर देखने लगी। पाण्डव द्रौपदी की कातर दृष्टि देख कर जितना व्यथित हुए, गत-सर्वस्व होने पर भी उन्हें वैसी मनः-पीड़ा नहीं हुई थी।

दुःशासन ने पाण्डवों को विषण्ण देख कर और द्रौपदी की बात सुन कर क्रोधान्ध हो, दृढ़ता के साथ द्रौपदीके केश खींचे और उसको दासी-दासी कहकर उच्चस्वर से हँसने लगा। कर्ण उसको बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रोत्साहित करने लगा। शकुनिने इसके लिये उसकी बड़ी प्रशंसा की। दुर्यो-धन ने उसको "साधु साधु"कहा।

पतिपरायणा पाञ्चाल-तनया ने कर्ण की कड़ी बातें सुनीं; सभास्थल से दुर्मति दुःशासन को उठते हुए देखा। क्रोध, लज्जा और भयसे सती का मुख विवर्ण हो गया। एक बार उसने

सभासदों की ओर देखा, सब नीरव थे। पतियों की ओर देखा, वे भी सिर नीचा किये बैठे थे। थोड़ी देर तक वह-स्तब्ध भाव से खड़ी रही ; एक बार दीर्घ निःश्वास परित्याग किया; दोनों आँखें आँसुओंसे भर आयीं ; कोप, क्षोभ, भय और दुःख से सती का हृदय व्याकुल हो गया ; मनस्ताप की अब सीमा न रही। अब वे अधिक मनोवेदना को सह्य न कर सकने के कारण करुण स्वर से कहने लगीं—"हाय मेरे भाग्य में क्या यही लिखा था ! अबला कुलबाला पर विपद आई हुई है; सामने वीर गण बैठे हुए हैं,निकटही रक्षा करनेवाले हैं, किन्तु सभी मेरी रक्षा करनेसे विमुख हो रहे हैं ! अपरिचिता कामिनी के धर्म को या मान-हानि की सम्भावना देखकर पुरुषार्थ-विशिष्ट पुरुष-मात्र ही करुणा-परवश हो उसकी रक्षा के निमित्त यत्न करते हैं । यहाँ बड़े बड़े वीर आत्मीय बैठे हैं ; पर वे मेरे लिये अपने मुँह से एक बात भी नहीं निकालते ; ज़बान भी नहीं हिलाते। जो धर्म्म के अनुरोधसे दार-परिग्रह करनेसे विरत हैं, और धर्म्मके द्वारपर कुलवधू होनेके कारण मेरी रक्षा करनेके लिए बाध्य हैं, जो पराक्रमशाली गुरु अन्यायाचरण देखकर द्विजकुलोचित कोपसे अग्निके समान हो जाते हैं, वे जिसको अपनी कन्या के समान मानते हैं. उसका अपमान और धर्मनाश समीपवर्ती देखकर भी क्यों निस्तेज और निश्चेष्ट होकर बैठे हैं ? जो इस दीन-दुःखिनी के साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध होने के समय आजीवन रक्षण-वेक्षण करने की प्रतिज्ञा पर आरूढ़

हुए थे, क्या वे भी अपनी इस दासी को इस समय भूल गये ? क्या धर्मराज को अब धर्म-ज्ञान नहीं रहा? जिन्हों ने स्वयम्वर-सभा में अकेलेही लाखों राजाओं की ओर न देखकर मुझे अभय दिया था ; क्या उन्होंने अपनी इस वशवर्त्तिनी को छोड़ दिया ? जिनके पराक्रमसे महाशूर बकासुर मारा गया, हिडिम्ब राक्षस पञ्चत्वको प्राप्त हुआ, जिनके प्रतापसे राजान्तक जरासन्ध काल-कवलित हुआ, क्या उनका भी सारा बल-वीर्य्य इस समय अन्तर्हित हो गया ? क्या आज आत्मीयत्त्व और क्षत्रियत्व सब विलुप्त हो गया ? क्या इस क्षत्रिय-समाज में एक भी ऐसा क्षत्रिय नहीं है, जो विपन्न रमणीकी रक्षा-स्वरूप पुरुष-धर्म्म का पालन करने के लिये अग्रसर हो ? हाय ! क्या अग्नि तेजोहीन हो गई ? सूर्य्य क्या प्रताप-रहित हो गये ? क्या सभी अपने-अपने स्वभाव-सिद्ध गुणों को भूल गये ? हाय धर्म ! यह सब देखकर भी तुम इस पृथ्वी को छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले गये ? अब स्वामी के निकट, आत्मीय के निकट, वीर के निकट, आश्रय की प्रत्याशा नहीं रही ! अब किस के पास जाऊँ ? किसके निकट इस सङ्कट में शरणापन्न होऊँ ? कौन मुझे बचावेगा ? हे भूतभावन भगवान ! तुम्हीं दुर्बलों के बल हो ! दीनों के आधार हो ! निराश्रय के आश्रय हो ! तुम्हीं आश्रय दो ! सहायता के लिये, आश्रय के लिये, रक्षा के लिये; और किसके पास रोऊँ ? आपके सिवा मेरा और कोई नहीं है ।

जलता हुआ गृह जिस प्रकार एक बार वायु के वेग से प्रज्वलित और फिर जल की धारा से निर्वापित हो जाता है, उसी प्रकार द्रौपदी की यन्त्रणा देखकर भीम का क्रोध उद्दीपित और फिर बड़े भाई की भक्ति प्रदीप्त होने से उपशमित होने लगा : जिस प्रकार पापाचरणके स्मरण होने से साधुका हृदय सन्तप्त और फिर शान्ति का उद्रेक होनेसे शान्त होता है, उसी प्रकार भीमका मन दुःशासनका कार्य्य देखकर उतप्त और बड़े भाईकी अधीनताका विचार करके प्रशान्त होने लगा। इस प्रकार क्रोध-वृत्ति और अग्रज-भक्ति एकके बाद दूसरी हृदयमें आकर भीमको व्याकुल करने लगीं: जिस प्रकार झटिकाके प्रभावसे एक ओर प्रवाहित नदी का प्रवाह वात्या-ताड़ित हो विघूर्णित हो जाता है, उसी प्रकार अग्रजानुरक्त भीमका अन्तःकरण क्रोध के वश से विकलित होने लगा। भीम ने एक बार सोचा, अयथाचारी प्रिया-प्रहारीका मस्तक चूर्ण करके अपने क्रोधानल को निर्वाण करूँ; फिर सोचा, अपने से बड़ेकी अनुमति बिना साहसिक कार्य्य करना छोटे को उचित नहीं है। एक बार सोचा, सभा के बीच स्त्री का अपमान नितान्त ही असह्य है। फिर सोचा, ज्येष्ठ की सम्मति बिना काम करना छोटे के लिये कभी वैध नहीं है। एक बार सोचा, स्वामीके सामने पत्नीको वेइज्जती प्राणान्त क्लेशकर और एकान्त अयशस्कर है। फिर सोचा अग्रजकी अवाध्यता उसकी अपेक्षा न्यून नहीं है। इस प्रकार भीम संशयित-चित्त हो, दण्डदलित सर्प के

समान एक बार अपने मस्तक को उन्नत और फिर अवनत करने लगी।

भीष्म ने स्नेह-पूर्ण शब्दों में द्रौपदी से कहा—"अयि कातरे! मैं धर्म का विचार करके ही बड़े पशोपेश में पड़ा हुआ हूँ; धर्मराज ने पहले पराजित हो तुम्हें दाव पर रख कर अनधिकार कर्त्तव्य किया है, और स्त्री के ऊपर उसके स्वामी का अधिकार होने के कारण तुम्हें वे दाव पर रख सकते थे; ये दोनों बातें न्यायसंगत हैं, इसी से मैं तुम्हारे प्रश्न का वास्तविक उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सकता; युधिष्ठिर अपना सर्वस्व चले जाने पर भी कुण्ठित होनेवाले नहीं; किन्तु धर्म में कुछ भी व्यतिक्रम होने पर उनके मनस्ताप की सीमा नहीं रहेगी। जिस प्रकार धर्मकी रक्षा करना प्रधान कर्त्तव्य है, उसी प्रकार धर्मपत्नी का क्लेश दूर करना भी उचित है। मैं दोनों पक्ष-साधनी कोई युक्ति उद्भावित नहीं कर सकता, इसीसे जड़प्राय होकर चुपचाप बैठा हूँ।"

द्रौपदी ने कहा—"महात्मन्! आप कौरव और पाण्डव दोनों के पूजनीय हैं, आपके मतसे जब मैं भली भांति विजित नहीं हुई, तो फिर मैं क्यों इस प्रकार क्लेश पा रही हूँ; क्यों यह दुराचारी मुझे दासी-दासी कह कर मेरा उपहास कर रहा है? स्त्री-जाति स्वामी के अधीन होने के कारण ही क्या पर-पुरुष का पराभाव सह्य करेगी या सभा में लज्जित होगी? अब तक दुःशासन मुझे दुःख देना नहीं छोड़ता, क्या मैं क्षत्रि-

याङ्गना नहीं हूँ? मेरे स्वामी अपने चात्रतेज को तो दाव पर नहीं हार चुके हैं! उस तेज की शिखा अबतक प्रज्वलित है रे दुरात्मा दुःशासन! अब भी तू मुझे छोड़! तू क्यों वारम्बार मरने के लिये इस जाज्वल्यमान अग्नि-शिखा पर पतङ्ग की वृत्ति अवलम्बन कर रहा है? तू अभी भस्म हो जायगा!

वीर-वनिता की समुचित बातें सुनकर भीमसेन ने क्रोधित होकर कहा,—"धर्मात्मन्! द्यूतोन्मत्त मनुष्य वेश्याको भी दाव पर रखकर जूआ नहीं खेलते; वे उसपर भी सदय व्यवहार करते हैं। तुम्हारा व्यवहार देखकर धर्मभीरुता पर अश्रद्धा होती है; सवर्णा साध्वी सहधर्मिणी को दावपर रखना, कभी धर्मभीरुता का लक्षण नहीं हो सकता। शास्त्रकारोंने कुलश्री और कुलस्त्रीका भरण-पोषण करने के लिये सैकड़ों अकार्य्य करनेके लिये कहा है; कुलश्री को क्लेश देने या क्लेशदायक मनुष्य के हाथ समर्पण करने की व्यवस्था कोई नहीं देता। छोटे भाई के ऊपर बड़े भाई का प्रभुत्व होने के कारण, हम लोगों को जो आप हार चुके हैं, उसके लिये मुझे क्षोभ नहीं होता। नीचाशय कौरव केवल तुम्हारे कर्त्तव्य-दोष से जातिमान-स्वरूपा पाण्डव-महिला को भरी सभा में क्लेश दे रहे हैं, इसीलिये मैं कुपित हुआ हूँ। तुम जिस हाथसे जूआ खेल चुके हो, उसी तुम्हारे हाथ को मैं काट कर अभी आग में जला देता हूँ।"

अर्जुन ने भीम को और अधिक बोलनेसे रोककर समझाते हुए कहा,—"भीमसेन! मैंने कभी तुमको क्रोधमें आकर इस प्रकार दुर्वचन बोलते हुए नहीं देखा है; मुझे मालूम होता कि तुम धर्म का गौरव नष्ट करके शत्रु की मनोकामना पूर्ण कर रहे हो; तुम अब शत्रुओं के सामने अपने बड़े भाई का अपमान मत करो। वे इस समय जूए में पराजित होकर अ-प्रतिभ हो गये हैं। राजा धृतराष्ट्र ने जूआ खेलने के लिये उन्हें बुलाया था। क्षात्र-धर्म का पालन अवश्य करना पड़ता है; इन्हीं दो कारणों से धर्मराज इस द्यूतक्रीड़ा में सम्मिलित हुए हैं। यदि वे जूआ नहीं खेलते, तो क्षत्रिय-समाज में हम लोगों का अयश होता: यशोधन यश की रक्षा के लिये पुत्र कलत्रादि बाह्य वस्तुओं में आस्था नहीं दिखाते; यहाँ तक कि वे यश की रक्षा के लिये अपने प्राण तक परित्याग कर सकते हैं।" भीम अर्जुन की बातों का कुछ भी उत्तर न दे, मारे क्रोध के मौन ही साधे रहे।

उस समय धृतराष्ट्र-पुत्र विकर्ण ने दुःशासन का दुर्द्धर्ष-भाव, द्रौपदी का कातरभाव और सभ्योंका तुष्णीभाव देखकर कहा,—"राजन्यवर्ग! जब आप लोग सभामें बैठकर सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं, तब विचारार्थिनी द्रुपदनन्दिनी के प्रश्न की मीमांसा करने के लिए आप सभी बाध्य हैं; सभ्योंकी श्रेणीमें बैठकर राग-द्वेष परित्याग-पूर्व्वक आप लोग अपनी-अपनी मति के अनुसार संगत बात न कहियेगा, तो आप लोगोंको नरकमें

जाना पड़ेगा। द्रौपदी बारबार जो प्रस्ताव कर रही है, आप सभी लोगों को उस पर विचार करना आवश्यक है; बारबार अनुरोध करने पर भी जब आप लोगों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी राय दे रहा हूँ, आप लोग ध्यान-पूर्वक सुनिये। शास्त्रकार मद्यप, बुरे कामों में अनुरक्त, द्यूतोन्मत्त और अत्यासक्त लोगों की बातों को प्रमाण-योग्य नहीं मानते। युधिष्ठिरने द्यूतोन्मत्त हो द्रौपदी को दाव पर रक्खा था, इस कारण अनिन्दिता द्रुपद-दुहिता कभी पराजित नहीं हो सकती; विशेषतः द्रौपदी पाँचो पाण्डवों की स्त्री है, उसको केवल युधिष्ठिरको दाव पर रखनेका अधिकार नहीं है। और भी; युधिष्ठिर पहले पराजित होकर पराधीनता-निबन्धन पर-प्रभुत्व से क्षमतापन्न नहीं हैं। यही कारण है कि मेरे विचार से द्रौपदी पराजित होने के योग्य नहीं है। एक तो युधिष्ठिर द्यूत में आसक्त हो बारबार पराजित होनेके कारण द्रौपदीका नाम तक भूल गये थे, केवल सुबलनन्दन शकुनि की उत्तेजना-पूर्ण बातों से उसको उन्होंने दाव पर रक्खा था। शकुनि की दुरभिसन्धि और युधिष्ठिर की द्यूतासक्तता के कारण निरपराधिनी द्रुपदसुता पराजित नहीं कही जा सकती। दाव पर हारने पर भी राजबाला और राज-महिला सभा में बुलाने और अपमानित करने के योग्य नहीं है। इन्हीं सब बातों का विचार कर, मैं द्रौपदी को भूलकर भी पराजिता नहीं स्वीकार कर सकता।"

सभ्यगण विकर्ण की बातको युक्तियुक्त समझकर, उसको साधुवाद और शकुनिको निन्दावाद प्रदान करने लगे। इस सम्बन्धमें बहुत देर तक वहाँ तुमुल कलरव होता रहा। उस कलरवके बन्द होने पर कर्णने विकर्णको पुकार कर प्रसन्नताके साथ कहा,—"विकर्ण! इस सभामें ज्ञान-वृद्ध वयोवृद्ध भीष्म प्रभृति महात्माओं के रहते धर्म्म-मीमांसा में तुमने प्रवृत्त हो कर भारी लड़कपन किया है! तुम तो अभी लड़के हो; सुतरां, लड़कपन-सुलभ प्रगल्भता ही तुम्हारी मीमांसा है। अद्यापि धर्म्म-मीमांसामें तुम्हारी बुद्धि मार्जित नहीं हुई है; जब सभा में बैठे हुए मीमांसक द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझते, तब वे द्रौपदीके किये हुए प्रश्नको प्रश्नमें गणना ही नहीं करते। यदि प्रश्न ग्राह्य करने योग्य होता, तो बहुत प्रकार के मीमांसा-वाक्य और हेतुवाद सुन लेते, एवं मतभेद भी समझ सकते। अतएव महात्माओं की उपेक्षा ही अवज्ञा-प्रदर्शन का कारण समझना। तुम वाचालता द्वारा केवल शिशुजन-विरुद्ध वृद्धभाषिता प्रकाश कर उपहासास्पद हुए हो। यदि तुम्हारी बुद्धि धर्म्म-मार्जित होती, तो तुम द्रौपदी को न हारी हुई सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। स्मरण कर देखो, जब युधिष्ठिर भरी-सभा में अपना सर्वस्व दाव पर रख कर हार चुके हैं, तब क्या द्रौपदी उस सर्वस्व में नहीं है? युधिष्ठिर के समान कापुरुष की स्त्री ही सर्वस्व धन है! द्रौपदी को सर्वस्व के अन्तर्गत होने पर भी शकुनि ने उसको

फिर से दाव पर रख कर जीत लिया है; इसमें अब कोई क्या आपत्ति कर सकता है?

"राजा दुर्योधन सिद्धान्त-शिरोमणि हैं। उन्होंने जिस कारण से द्रौपदी को सभा में बुलाया था, उसे भी सुनो; ब्रह्मा ने स्त्री-जाति के लिए एकमात्र पति निर्दिष्ट किया है: द्रौपदी के पाँच पति हैं। विधाता के नियमका उल्लङ्घन करके पाँचालि ने पाँच पुरुषों को पति बनाया है; ऐसी दशामें इस को वेश्या समझना कुछ असङ्गत नहीं होगा। वेश्याओं के सभा में आने से उनको मानहानि क्या होगी? दुःशासन! विकर्ण बालक है, उसकी बात सुनने के योग्य नहीं है, यह समझ कर पाण्डवों और द्रौपदी का जो कुछ हो, उसे ले लो।" पाण्डवों ने कर्ण की यह बात सुनकर अपनी-अपनी पगड़ी उतार कर दे दी। पाण्डवों की पगड़ी लेकर दुःशासन द्रौपदी के शरीर का वस्त्र खींचने की तैयारी करने लगा।

दुःशासन को वस्त्र हरण करनेके लिये आते हुए देख कर, द्रौपदीने प्रत्युत्पन्नमतित्वके साथ कहा,—"रे दुःशील दुःशासन! मैं एक-वस्त्रा हूँ, इस समय तू मुझे स्पर्श न कर; दुःशासन आगे न बढ़ कर स्तम्भित होकर वहीं खड़ा हो गया। अनन्तर स्पष्ट रूप से बोला,—"चतुर-चूड़ामणि-कामिनियोंकी अभिसन्धि समझना सहज काम नहीं है चाहे जो हो, परीक्षा करनी चाहिये।" यह कह कर उसने शीघ्रतासे द्रौपदी के शरीर का कपड़ा पकड़ लिया, और बारम्बार उसे खींचने लगा।

उस समय द्रौपदी नितान्त निराश हो मन-ही-मन भगवान की चिन्ताकर कहने लगी,—"भगवन ! हे लज्जा निवारक ! दानवारि हरि ! इस समय आपके सिवा दूसरा कौन मेरी लज्जा रख सकता है ? इस दुःसमय में दया वितरण कर अपने दयामय नामका गौरव रखिये; हे दर्पहारिन जनार्दन ! आपका यदि वह भयभञ्जन हरि नाम यदि अभय प्रदान नहीं करेगा, तो इस अनन्यगति अनाथिनी की क्या गति होगी ; आप ही तीनों लोक के विचारकर्ता हैं ; राजसभामें सुविचार न होने पर भी आपकी सभा में अविचार नहीं होगा। यही मेरा प्रधान भरोसा और अन्तिम आशा है। हे दयामय ! आप सभी जीवोंके अन्तर्गत भावोंको जाननेवाले हैं, इसीसे आपका अन्तर्यामी नाम है ; दुरात्माके अत्याचारसे मेरे अन्तरमें जो विषम यातना हो रही है, उसे आपही जानते हैं। प्राणियोंके दुःख का हाल आप जान लेते हैं, इसीसे लोगोंके आपकी शरणमें आ जाने पर क्लेशका लेश भी आप नहीं रहने देते। हे जगदीश्वर ! मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस अभागिनी पर आपका अनुग्रह सदा रहे। हे लोकनाथ ! एकमात्र स्वामीके विद्यमान रहनेपर अबलाएँ किसीसे नहीं डरतीं और किसी वस्तुका अभाव नहीं समझतीं। महाबल पराक्रान्त मेरे पाँचों पति सामने उपस्थित हैं, मैं उनकी एकान्त दयिता वनिता हूँ; विधि-विडम्बनासे वे इस समय नियम-बद्ध हो पिञ्जर-बद्ध मृगेन्द्र के समान क्षमता रहते भी अक्षम हो रहे हैं ; कितने दुःख का विषय है ! वे

सभी महात्मा औषधिरुद्ध-वीर्य्य काले नागके समान महा-विपद्ग्रस्त हो रहे हैं। हाय! मैं मृगेन्द्र की महिषी होकर कुत्तों का आहार हो रही हूँ! मैं कालीनागिन होकर विडालके नखाघातसे आक्रान्त हो गयी! कुलाङ्गनायें स्वभावतःही भीरु स्वभाव की होती हैं। उसपर से पापात्मा भरी-सभामें मेरी बेइज्जती कर रहा है, कितना बड़ा दुःख है! जिससे एकको मृत्यु होती है, क्या वही दूसरे के लिये आमोदका कारण होता है? ऐसे समयमें मेरा मर जानाही अच्छा है; इस यन्त्रणाकी अपेक्षा मृत्यु-यातना समधिक क्लेशदायिनी नहीं है। यदि यही होना था, तो फिर मृत्यु क्यों नहीं आयी? हृदय में लज्जा के रहते अपनी यह दशा मैं नहीं देख सकती; इसी लिये आज मृत्यु-प्रार्थना करने पर भी दुर्लभ हो रही है; असह्य यन्त्रणाके समय मृत्यु उपस्थित होकर यन्त्रणाका अवसानकर देती है, यह बात भी वृथा है। यदि यह बात सत्य होती, तो वस्त्र-हरण के लिये उसके प्रस्तुत होते ही वह अग्रसर हो मेरी सारी यातना दूर कर देती। अब मैं समझ गई, कि मृत्यु की अपेक्षा अधिकतर यातना भोगने के लिये ही मुझे जीवित रहना पड़ेगा। मेरा जन्म केवल दुःख भोग करने के लिये ही हुआ है; नहीं तो मैं राजा की कन्या, राजा की पतोहू, राजाकी महिषी और श्रीकृष्णचन्द्र की सखी होकर भी, सभामें इस प्रकार अपमानित क्यों होती? इस प्रकार कहते-कहते द्रौपदी के विशाल लोचनों से अश्रुजल बड़े वेग से निकलने

लगा ; घनीभूत वाष्प-वेगसे उनका शरीर अनवरत कम्पित होने लगा ; अनन्तर दोनों ऊरु स्तम्भित हो गये ; सभी अव-यव अवसन्न हो गये । वे भरी सभा में गिरकर मूर्च्छित हो गयीं ।

ओजस्वी और तेजस्वी सम्भ्रान्त पुरुष, मूर्खोंका विद्वेष-पूर्ण कष्टकर व्यवहार देखकर क्रोधान्ध हो भार-पूर्ण बातों से भर्त्सना कर क्रोधभाव परित्याग करते हैं, नहीं तो मूर्खों की नीच प्रकृति के अवश्यम्भूत प्राकृतिक दुर्व्यवहार को देखने के योग्य न समझ कर अपने को भला-बुरा कहते हुए शान्तभाव धारण करते हैं । भीमसेन ने दुःशासन को द्रौपदी का वस्त्र हरण करने के लिये उद्यत देखकर ओज गुण धारण किया । केवल दुःछेद्य धर्म्मपाशसे बद्ध रहने के कारण तेज प्रकाश न कर सके; हाथ मलते हुए आसन छोड़कर उठ खड़े हुए । उस समय केवल अपने तईं कोसते हुए उन्होंने अपना क्रोधानल शान्त किया । तब उन्होंने "अर्जुन-अर्जुन" कहकर पुकारा; किन्तु मुख खोलकर कोई बात नहीं बोले । चारों ओर देखा, दुःशासन के अत्याचार के सिवा वे और कुछ नहीं देख सके । तब वे वीर-वृन्द-वेष्टित सभा को अपने पाँव के भार से विकम्पित करके बोले—"अर्जुन ! इतना अत्याचार क्या इन ओजस्वी आँखोंसे देख सकते हो ? देखकर भी इसे सह्य कर सकते हो ? धर्म्मराज ! धर्म्मराज ! क्या धर्म्म-पाश इतना दुश्छेद्य है ? जरासन्ध के सन्धि-स्थलको अपेक्षा भी क्या अत्यन्त दुर्भेद्य है ? भीम क्या

इतना दुर्बल है? भीम की गदा क्या इतनी असार है? सभा-सद्गण! भीम यहाँ उपस्थित नहीं है, किम्बा भीम अब जी-वित नहीं है, यही आप लोग समझ लीजिये। हाय! भीमके सामने ही ऐसी वीभत्स घटना घटी! अर्जुन! शीघ्र खड्ग ले आओ, मेरी इन दोनों बाहों का अभी काट डालो, नहीं तो इन हाथी की सूँड के समान मांसल इन दोनों भुजाओं को मैं स्वयं काट डालूँगा। अर्जुन! कार्य के समय सभास्थल में इनकी प्रयोजनीयता नहीं हुई, और इनकी बलवत्ता दिखाई नहीं जा सकी, तो केवल शोभा के लिये व्यर्थ को इन दोनों भुजाओं के धारण करने की आवश्यकता ही क्या है? आओ मेरी इन दोनों आँखोंको फोड़ दो; अब मैं द्रौपदीका पराभाव नहीं देख सकूँगा। क्या मैं इन दोनों आँखोंके रहते हुए भी अन्धा हूँ? जब द्रुपद-दुहिताकी दुरवस्था प्रत्यक्ष देखकर भी उसका प्रतीकार करने में चक्षुष्मत्ता का काम नहीं कर सका, तो मैं अन्धे के सिवा और क्या हो सकता हूँ? मैं बहरा होता तो अच्छा होता। मैं बहरा होता तो पाञ्चालीके कातर वाक्य न सुनने पड़ते। अच्छा मुझे बहरा ही समझो; द्रौपदी की करुणध्वनि सुनकर भी जब मैं उदासीन के जैसा व्यवहार क-रता हूँ, तब मैं बहरे के सिवा और क्या हो सकता हूँ? मैं व्यर्थ ही वीरों में गिना जाता था, कार्य के समय मैंने पशु के समान व्यवहार किया! मुझे धिक्कार है! दुःशासन अबतक जीवित है—यही भीम के लिये बड़े भारी कलङ्क की बात

है! कलङ्क! भीम अपने शत्रु का संहार नहीं कर सका, यह मेरे लिये बड़ाभारी अपवाद है। नहीं, भीम जब जीवित है, तब यह अपवाद नहीं होने पावेगा। भीम अकेला ही समर्थ है, शत्रु का संहार करने में अभी मैं समर्थ हूँ। शत्रु-वंश का ध्वंस करना अधर्म नहीं, अयशस्कर नहीं; भीम से ही धार्त्तराष्ट्र निर्वंश होंगे, यह निश्चय है। वायु एक समान ही चलती है, बड़े भारी वृक्ष को किस प्रकार उखाड़ कर ज़-मीन पर गिराना पड़ता है, इस बात की शिक्षा वह दूसरे के निकट नहीं ग्रहण करती। लोकपालगण! भूपालगण! तुम लोग गवाह हो, साक्षात् देख रहे हो, और भी देखोगे। भीम धर्मपाश में बँधा है, इसी से इस समय कापुरुष हो रहा है। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कि यदि दुःशासन-पशु का हृदय विदीर्ण करके उसके गरम रुधिर से राजसूयाभिषिक्त दुःशासन-स्पर्श-दूषित आलुलायिता द्रौपदी का केश-कलाप नहीं बाँध सका, तो मेरी क्षत्रियोचित सद्‌गति न हो! रे दुःशासन पशो! अब तू चाहे सुरपति इन्द्र के निकट जा, चाहे वासुकि के पास जा, तेरा निस्तार नहीं, परित्राण नहीं। अर्द्धरथ कर्ण की तो बात ही नहीं, जो आज सौ भाई वाले बने हैं, जिनके कौ-शल से यह कपट द्यूत की सृष्टि हुई है, जो अन्धेकी अवलम्ब लकुटियाँ है, वे भी अन्तमें रोवेंगे। निश्चय जान, भीमकी प्रतिज्ञा कभी निष्फल होने की नहीं; प्रभाकर और वैश्वानर हिमका आगम होने पर निस्तेज और सुखस्पृश्य हो जाते हैं, किन्तु

भीम शार्दूल के समान उस समय भी प्रबल और दुर्द्धर्ष ही रहता है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके, भीमसेन सभा-भवन में नीचा सिर करके बैठ गये। वीर पुरुष साधुवाद प्रदान कर भीम की ओजस्विता, तेजस्विता और बड़े भाई की वशवर्त्तिता की अशेष प्रशंसा करने लगे।

इधर करुणामय कमलापति की इच्छा से, धर्म्म गुप्त रूप से वस्त्ररूप धारण कर द्रौपदी के अङ्गको आच्छादित करने लगे। दुःशील दुःशासन द्रौपदी को विवस्त्रा करने के लिये जितना ही वस्त्र खींचने लगा, उतनाही वह बढ़ने लगा। सभ्य लोग यह दृश्य प्रत्यक्ष देख कर विस्मय के समुद्र में डूब गये; और साध्वी-साध्वी कहकर याज्ञसेनीको प्रशंसा और दुरात्मा-दुरात्मा कहकर दुःशासन का तिरस्कार करने लगे। दुःशासन जब उसके शरीर का कपड़ा खींचकर उसे नङ्गी न कर सका, तब अप्रतिभ और हतबुद्धि होकर सभा के एक पार्श्व में बैठ गया।

विदुरने सभ्योंको पुकारकर कहा—"द्रौपदी कातरप्रार्थना-पूर्वक दीनता-पूर्ण आँखों से आपकी ओर देखकर, जिस प्रश्न की मीमांसा करने के लिये आप लोगोंसे निवेदन कर रही है, आप लोग उसका उत्तर दीजिये। विना कातर हुए कोई विचार के लिये प्रार्थना नहीं करता। प्रश्न की मीमांसा यहाँ नहीं होगी, तो सभा नहीं रहेगी। न्याय-मूलक धर्म्मानुसार विचार के द्वारा अर्थी-प्रत्यर्थी को सान्त्वना न देने से, सभ्य

सभ्यमण्डली से अलग हो जायँगे। विचार-स्थान पर जान-बूझ कर पक्षपात करने से विचार करनेवाले नरकमें पड़ते हैं; अतएव आप लोग पक्षपात-छोड़कर द्रौपदी द्वारा किये हुए प्रश्नका वास्तविक उत्तर प्रदान कीजिये और यथाबुद्धि कोई सिद्धान्त स्थिर कीजिये। विकर्ण अपनी बुद्धि के अनुसार अपना मत व्यक्त कर प्रशंसा के पात्र हुए हैं। आप लोग भी इस विषय में यथामति विचार कर अपना-अपना मत प्रकट कीजिये। अधिक मनुष्यों की जो राय होगी, वही ठीक समझी जायगी। शास्त्रकारों ने कहा है, सभ्यों की श्रेणी में बैठकर जो जान-बूझ कर विचार-सङ्गत बात नहीं कहते, वे असत्य बोलने के आधे फल के अधिकारी होते हैं; और जो विचार्य्य विषयमें मिथ्या सिद्धान्त करते हैं, या अन्याय-विचार का अनुमोदन करते हैं, वे असत्य बोलने के सम्पूर्ण पाप के भागी होते हैं। अतएव आप लोग उपस्थित विषय में अपना-अपना मत प्रकट कीजिये।" विदुर की बात समाप्त होने पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर कर्ण ने कहा,—"दुःशासन! अब क्यों इन्तज़ार करते हो? यदि सभ्योंकी राय न होती, तो उस विषय में पूरा आन्दोलन होता। सभ्य सच्ची और अप्रिय बात कहना नहीं चाहते, इसी से मौनावलम्बन किये बैठे हैं। "मौनं सम्मति लक्षणं" इस युक्ति-वाक्य का मर्म्म समझकर, दासी द्रौपदी को घरमें ले जाकर दासियों के साथ रख दो।" दुःशासन कर्ण के उपदेश को गुरु के उपदेश के समान मानकर, द्रौपदी के

केश खींच कर, घर की ओर ले जाने की तैयारी करने लगा।

द्रौपदी ने कहा—"रे दुःशील दुःशासन! तू थोड़ी देर और ठहर, सभ्य महोदय मेरे प्रश्न का उत्तर देते हैं या नहीं; यह जानना मुझे बड़ा आवश्यक है। दुरात्मा फिर बाल खींच रहा है! मेरा जो केशपाश राजसूययज्ञ के अभिषेक-जल से पवित्र हुआ था, उसको तू बारम्बार अपवित्र कर रहा है। तेरे आकर्षण से मैं क्लान्त हो गई हूँ। तेरे उद्धत व्यवहार से मैं बारम्बार कौरवों को अपवित्र बातें कह रही हूँ। तू पूरा असभ्य है। सभ्यमण्डली में कैसा आचरण करना चाहिये, यह तू कुछ नहीं जानता। केवल आज्ञावह बलगर्व्वित पदातिक के समान दूसरे की अनुज्ञापालन में तत्पर हो रहा है। तू यह नहीं समझ सकता, कि इससे लोगों को तेरी अभद्रता मालूम हो रही है। तुझे अपने कर्त्तव्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है। जिस उपाय से मनुष्यों को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है, उस पर तेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। बिना शिक्षा के मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं होता; इसीलिये तू इस सभा में इतना अशिष्ट व्यवहार दिखा रहा है। अच्छे कुल में मूर्खों का जन्म न होना ही अच्छा है। दुरात्मा कपड़ा खींचने के समय धर्म की महिमा देखकर भी तेरी आँखें नहीं खुलीं! धर्म-बुद्धि से मैं बारबार तेरे अहिताचार को सह रही हूँ, अब न सह सकूँगी। यदि तूने फिर मेरे शरीर का

कपड़ा स्पर्श किया, तो मैं शाप द्वारा तुझे भस्म कर दूँगी!"
दुःशासन इस शिष्टाचार-पूर्ण शासन से अथवा कर्त्तव्य-कर्म की असमर्थता के कारण से अथवा अभिशाप के भयसे थोड़ी देर के लिये स्वानुष्ठित कार्य्य में भग्नोत्साह हो गया।

भीष्मने मध्यस्थ हो उचित विचार के साथ कहा—"सुभगे! धर्म की गति इतनी सूक्ष्म और इतना जटिल है, कि बड़े-बड़े पण्डित भी उसका तत्त्व-निरूपण या प्रकृत रूप से मीमांसा नहीं कर सकते, इसलिये तुम्हारे प्रश्न का प्रकृत सिद्धान्त नहीं होता। तुम जिस कुल की पतोहू हो, वे विचार-विमूढ़ हो केवल दुःखाभितप्त हो रहे हैं। धृतराष्ट्र के पुत्र असमीच्यकारिताके वश हो, आत्म-विनाश का काम कर रहे हैं। धर्म्म का तत्व जाननेवाले द्रोणाचार्य्य प्रभृति महात्मा धर्म्मतत्व की विवेचना करनेमें असमर्थ हो, अधोवदन किये बैठे हैं। हे साधुशीले! तुम भी ऐसी दुर्दशामें ग्रस्त हो कर, केवल धर्म्मका पथ देख रही हो। युधिष्ठिर साक्षात् धर्म्म हैं। वे तुम्हारे प्रश्न की जो मीमांसा करेंगे, वही वास्तवमें माननीय होगी। उसीके अनुसार यह स्थिर होगा, कि तुम्हें दाव पर रखना चाहिये था या नहीं; तुम जीती गयी हो या नहीं। अतएव इस समय तुम्हारे प्रश्न की मीमांसा करने का भार युधिष्ठिरके ही ऊपर रक्खा गया। वे ही तुम्हारे प्रश्न का समुचित उत्तर दें।"

दुर्य्योधनने भीष्मकी बातका अनुमोदन करते हुए कहा,—

"द्रौपदि! केवल युधिष्ठिर ही के ऊपर क्यों भार रक्खा जाता है? तुम्हारे चार स्वामी और भी तो सभामें बैठे हैं। वे भी तुम्हारे प्रश्न की मीमांसा करें। वे भी यदि इस आर्य्य-मण्डली के बीच धर्म्मराज की प्रभुता अस्वीकार करना चाहें तो करें; और बड़े भाई को मिथ्यावादी कहकर, तुम्हें दाव पर रखनेके अयोग्य समझें, तो औरभी अच्छी बात है। तुम्हारा दुःख देखकर सभी सभासद दुःखी होरहे हैं, और इसीलिये समुचित उत्तर प्रदान नहीं करते। विशेषतः, तुम्हारे स्वामियोंकी दुर्दशा देखनेसे किसी ही के मुखसे प्रवृत्त उत्तर नहीं निकलता। अच्छा, धार्म्मिक-श्रेष्ठ युधिष्ठिर जो कहेंगे, वही माना जायगा। उन्हींको उपस्थित विषयमें विचारकी क्षमता दी गयी। वे क्या विचार करते हैं, अब यही देखना है।"

दुर्योधनकी बात समाप्त होते ही भीमसेन करतल समर्द्दन-पूर्व्वक बोले,—"यदि धर्म्मराज हमलोगोंके स्वामी न होते; तो मैं जो करता, उसे सभी सभासद इसी समय देख लेते। बड़े भाई हमलोगोंके जीवनके स्वामी हैं, इसीसे उनके पराजयसे हमलोगोंने आत्म-पराजय स्वीकार किया है। वे यदि हमलोगों के प्रभु न होते, तो भीमके जीवित रहते, द्रुपदराज-तनयाका केश स्पर्श करने की हिम्मत किसमें थी? सर्प की मणि को लेना कोई साधारण काम नहीं है। सिंहके सामने शृगाल कितनी देर तक गर्ज्जन कर सकता है और कौन उसके बचाने की सामर्थ्य रखता है? मैं धर्म्मपाश में बद्ध हुआ हूँ, इसीसे

संसारने मेरा बाहुबल नहीं देखा : नहीं तो मेरे शत्रु को अब-तक जीवित रहना चाहिए था ? स्वयं वज्रपाणि इन्द्र भी मेरे शत्रु की रक्षा नहीं कर सकते। यदि धर्मराज एकबार भी इशारा करें, तो मैं बात की बातमें अभी धृतराष्ट्र को निर्वंश कर सकता हूँ, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।" इस प्रकार उत्तरोत्तर भीमका क्रोधानल प्रज्वलित होते देख. भीष्म प्रभृति महानुभावोंने कहा,—"भीम शान्त हो, तुम्हारे लिये कुछ भी कठिन नहीं है। यह तुम्हारा वागाडम्बर नहीं है,तुम्हारे लिये सब कुछ सम्भव है।" भीम जैसेही क्रोधी थे, वैसेही गुरुजनोंकी बात माननेवाले भी थे। गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन करना अन्याय समझ कर, औषधिरुद्ध-वीर्य्य वाले नागके समान दीर्घ निःश्वास परित्याग करने लगे।

कर्णने कहा,—"अयि द्रौपदि! शास्त्रके अनुसार स्त्री-जाति जिस प्रकार स्वामीके अधीन है, दास भी उसी प्रकार प्रभुके वशीभूत है। इन दोनों का अपना कुछ भी अधिकार नहीं रहता। तुम्हारे स्वामी द्यूतमें पराजित हो, इस समय दास-भावापन्न होरहे हैं। तुम उनलोगों की स्त्री हो, तुम भी दासी होगयी हो। जिन्होंने तुमलोगों को द्यूतमें जीत लिया है, उन्हींका तुम लोगोंके ऊपर पूर्ण आधिपत्य है। इस समय तुम पाण्डवोंकी भार्य्या नहीं हो; वे भी तुम्हारे स्वामी नहीं हैं। तुम यदि चाहो, तो दूसरा पति भी कर सकती हो। पर सावधान रहना! फिर ऐसाही ज्वारी पति न कर लेना। युधिष्ठिरने

राज-वंशमें जन्म लिया था; इसीसे राजा हुए थे; पर उनमें कार्य्या-कार्य्य का ज्ञान और परिणाम-दर्शिनी विवेक-शक्ति कुछ भी नहीं है। जब वे सबके सामने स्त्री को दाव पर रखकर जूआ खेल सकते हैं, तब ऐसी हालतमें भला कोई बुद्धिमान उन्हें मनुष्य कह सकता है ? द्रौपदि ! अब क्यों व्यर्थही इन असमीक्ष्यकारी पतियों की ओर देखकर तुम रो रही हो ? इस समय तुम मेरी आज्ञासे राज-परिवारकी सेवाकर कालक्षेप करो। स्त्रियाँ स्वामीके गुण और अवगुणके अनुसार सुख-दुःख का भोग करती हैं। तुम जैसे स्वामीके हाथ पड़ी हो, तुम्हारी गति भी वैसीही होगी। अब तुम कुरुपति को सन्तुष्ट करके दासीपनसे छुटकारा पा सकती हो। तुम्हारा राजवंशमें जन्म और राजमहिषी होना व्यर्थ ही समझता हूँ।”

भीमसेनने इन बातों को सुनकर लाल-लाल आँखें करके कहा,—“राजन् ! मैं सारथिके पुत्रकी बातों को सुनकर क्रोधित नहीं होता, हमलोग आपके कर्त्तव्य-दोषसे दास हुए हैं, इसका भी मुझे खेद नहीं है। आप यदि द्रौपदी को दाव पर न रखते, तो नीच पुरुषों के परुष वाक्योंसे मुझे कष्ट न होता।” भीम की बात सुनकर, युधिष्ठिरके मृतप्राय और मौनावलम्बी होनेके बाद दुर्योधनने कहा,—“हे पाण्डवा-ग्रज ! भीम अपने मुखसे आपकी वश्यता स्वीकार करते हैं। अब आप सभ्योंके सामने सच्ची बात कहिये। द्रौपदी पराजिता हुई या नहीं ? यदि आपलोग उसको हार गये हैं, तो हम-

लोग उसके साथ अपनी इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं।" यही कहकर दुरात्मा दुर्योधन नहीं रह गया। उसने कपड़ा हटा कर, कुटिल दृष्टिसे द्रौपदी की ओर देखकर, अपनी जाँघ दिखाई। कर्ण उसको प्रोत्साहित करनेके लिये अट्टहास्य करने लगा।

सभामें धर्मपत्नी का इस प्रकार अपमान और उसके प्रति जुगुप्सित व्यवहार देखकर, किस जीवित पतिको क्रोध नहीं होगा? उस पर महानल-पराक्रान्त कोपन-स्वभाव भीमसेन इस अत्याचारको सह्य करेंगे, यह कभी सम्भव नहीं। भीम क्रोधसे अधीर हो, मदमत्त मातङ्गके समान उठ खड़े हुए। उसी समय पदाघात से सभामण्डप को विकम्पित करते हुए, अपनी लाल-लाल आँखें करके भीम कहने लगे,—"सभासद गण! तुम लोग साक्षी रहो; मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि सम्मुख-संग्राममें गदा की चोट से दुरात्मा दुर्योधन की जङ्घा भग्न कर, उसके रुधिर द्वारा द्रौपदीका केशपाश न बाँध सका, तो मरने पर मेरी सद्गति न हो।" यह कहते-कहते अमर्षण भीमसेनने एकबारही प्रचण्ड भाव धारण कर लिया। उनके शरीरसे कोपाग्नि स्फुरित होने लगी। प्रलय-कालीन पवनके समान दीर्घ निःश्वास निर्गत होने लगा। उनका शरीर आग्नेय-गिरिके समान अनवरत विकम्पित होने लगा। फलतः भीमका भयानक आकार-प्रकार देखकर, सभ्योंने उसी समय समझ लिया कि, ये अवश्यही इस प्रतिज्ञा को पालन करनेमें समर्थ हैं।

इसके बाद विदुरने कहा—"सदस्यगण ! आपलोगोंने भीम की भयानक प्रतिज्ञा सुनी ! यह प्रतिज्ञा भरतवंशके नाशके निमित्त ही हुई है । राजा धृतराष्ट्रने महाभ्रष्ट द्यूत का अनुष्ठान कर, वैरतरु का अङ्कुर उत्पादन किया है । उनके पुत्रोंने सभाके बीच कुल-स्त्रीका अपमान करके, उस अङ्कुरको बढ़ाया है । इससे मुझे मालूम होरहा है, कि वंश का विलोप ही इस वृक्ष का फल होगा । अतएव तुमलोग क्यों इस वृद्ध राजा के भय से विचार-सङ्गत धर्मकी बात कहनेमें कुण्ठित होरहे हो ? जब युधिष्ठिर स्वयं पहले पराजित होकर द्रौपदीको दाव पर रखकर हार चुके हैं, तब इससे स्पष्ट मालूम हो रहा है, कि द्रौपदी को शकुनिने नहीं जीता है । विशेषत:, पराजित व्यक्तिका दूसरेके ऊपर अधिकार नहीं रहता । जिसके ऊपर जिसका प्रभुत्व नहीं, उसका उस धन को हारना कभी युक्ति-सङ्गत नहीं । जिस व्यक्ति का जिस धन पर जैसा स्वत्व रहता है, जेता का भी उस धन पर वैसाही स्वत्व रहता है । अतएव यदि स्वप्नमें दूसरेका धन पाकर लोग स्वत्वयुक्त होते हों, तब तो द्रौपदी पराजिता कही जा सकती है । यह द्यूतके बहाने झगड़े का बीज बोया जा रहा है और द्यूत कभी मङ्गलप्रद नहीं है, यह प्रमाणित हो रहा है ।"

दुर्योधनने विदुर की बातोंमें अनास्था दिखाते हुए कहा,—"युधिष्ठिर पहले अपने भाइयोंके प्रभु थे । इस समय यदि अर्जुन, नकुल और सहदेव उनको प्रभु न कहें, तो द्रौपदी ! तुम दासी-

पनसे छुटकारा पा सकती हो।" अर्जुनने नम्रता के साथ कहा, "राजन्! धर्मराज पहले हमलोगोंके प्रभु थे, क्या इस समय वे हमलोगोंके प्रभु नहीं हैं? जो हमलोगोंके ईश्वर हैं, इस समय उनका ईश्वर कौन है?" दुर्योधनने कहा,—"इस समय युधिष्ठिर जिनके निकट पराजित हुए हैं, वही उनके स्वामी हैं।" अर्जुनने कहा,—"धर्मात्मा का पराजय निर्वाचन करना क्या अर्व्वाचीन—अज्ञ—का कर्त्तव्य है?" इस प्रकार दोनोंमें वादाविवाद होने लगा।

इसके बाद विदुरने वैर-भावको बुरा समझ, कौरव और पाण्डवों की भलाई के खयालसे, धृतराष्ट्रके निकट जाकर कहा, "महाराज! आपने यह द्यूत का अनुष्ठान करके आपस में खूब वैर बढ़ाया! मैंने पहलेही निषेध किया था, पर आपने मेरी एक भी न सुनी। जुआ अनर्थ का मूल है, यह समझ कर भी आपने नहीं समझा। इस समय जिस भावका आविर्भाव हो रहा है, उसे आप देख नहीं सकते हैं: इसीसे आप निश्चिन्त हैं। यह देखिये, भीमसेनके मुखमण्डलने कैसा भयानक आकार धारण किया है! देखते-ही-देखते वह लाल हुआ जाता है। ललाट पर तीन रेखाएँ त्रिशूल के समान शोभित हो रही हैं; भौंहें टेढ़ी होगयी हैं; कभी वलिगत और कभी विकुञ्चित हो रही हैं; दोनों आँखें लाल हो गयी हैं। वे वारम्वार दाँतोंसे अपने अधर काट रहे हैं। प्रमाणसे अधिक श्वास के चलनेसे, नासाग्र कम्पित और स्फीत होरहा है। पसीनोंके जलसे

सारा शरीर आर्द्र होकर बारम्बार कम्पित हो रहा है। कितना चमत्कार है! देखते-देखते, उनका सारा शरीर इतना स्फीत होगया है, कि अब 'यह वही भीम हैं', यह भी पहचानमें नहीं आता।

"और दुर्योधन तथा अर्जुनकी जो बातचीत सुनाई पड़ती है, उससे वैरभाव उपस्थित होनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं मालूम होता। दुर्योधन व्यर्थका बत-बढ़ाव करके, अपने गर्वित स्वभाव का परिचय देरहे हैं; अर्जुन सारपूर्ण बातोंसे उचित उत्तर प्रदान कर रहे हैं। दुर्योधनके मुखसे विष निकल रहा है; अर्जुनके मुखसे आग निकल रही है। दोनो-दोनोंसे जैसी स्पर्धा कर रहे हैं, उससे शीघ्रही सभास्थल रणस्थल हो जायगा। माद्रीके लड़के स्पन्दनहीन धर्म्मनन्दन की परिचर्या कर रहे हैं। बीच-बीचमें उनकी मुखश्री म्लान होरही है। यदि इस अपमानसे कहीं धर्म्मनन्दन के प्राण छूट गये, तो आपके सभी लड़कोंको मारकर भी, भीम और अर्जुनका क्रोधानल निर्वापित नहीं होगा। भीम और अर्जुन के पराक्रमको आप भली भाँति जानते हैं। आपके लड़कोंमें ऐसा कोई नहीं है, जो इन दोनों के आक्रमणको रोक सके। यह देखिये, बड़े भाई के भक्त भीम और अर्जुन आज्ञाके लिये बारम्बार युधिष्ठिर का मुखमण्डल निरीक्षण कर रहे हैं। वे इस समय इतने क्रोधान्ध हो रहे हैं, कि उन्हें युधिष्ठिर की अवस्था का भी इस समय भली भाँति ज्ञान नहीं है और वे बिना बड़े भाई की

आज्ञा के कोई काम नहीं करते। इसीसे अब तक समरानल प्रज्वलित नहीं हुआ है।

"महाराज! जबतक सहिष्णुता-शक्ति आत्माको संयत करके रख सकती है, तभी तक मनुष्य धर्म्मबन्धनमें आबद्ध रह सकता है। जब कोई मर्म्मान्तक पीड़ा होती है, तब क्रोध अन्तःकरणमें सम्पूर्ण एकाधिपत्य कर लेता है; उस समय अन्यान्य वृत्तियाँ अन्तर्लीन हो जाती हैं और धर्म्मबन्धन कच्चे सूत के समान सहजमें टूट जाता है। तुम्हारे पुत्रोंने द्रौपदी का अपमान करके, पाण्डवोंको मर्म-पीड़ा देनेमें कुछ भी कोर-कसर नहीं रक्खी है। भीमके भी पूर्ण क्रोधित होनेमें अब विलम्ब नहीं है। अब आप यह सब सँभालनेका उपाय कीजिये; नहीं तो भयानक विपद् आने की सम्भावना है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और आपने कहा था, कि महारथी भीष्म और महोदय द्रोणाचार्य्य के रहते हुए इस सुहृद-द्यूतमें कलह न होगा। यह देखिये, ये दोनों महात्मा आपके पुत्रों का असदाचार देखकर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो, असन्तोष प्रकट कर रहे हैं। अपने पक्षके राजालोग इस कुकर्म्मको देखकर, दुर्योधनके प्रति घृणा प्रकट कर रहे हैं। यह सुनिये, असमय में स्यारिन अमङ्गल रोदन कर रही है। अग्निहोत्र-गृहके समीप गर्दभ अशुभ-ध्वनि कर रहे हैं। अशुभ समाचार लानेवाले पक्षी चारों औरसे श्रुति-कर्कश शब्द कर रहे हैं। राजन्! इन सब अपशकुनोंके देखनेसे स्पष्ट मालूम होरहा

है, कि अमङ्गल घटनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है।"

राजा धृतराष्ट्रने विदुरके इस उपदेशसे, संभ्रमके साथ उठकर कर कहा,—"अरे दुर्विनीत दुर्योधन! तू एकबार ही चैतन्य-शून्य होगया! कुरुकुलकी पतोहू, द्रौपदी को सभा के बीच तू यन्त्रणा देरहा है! मेरे सामने द्रौपदी और भानुमती दोनों समान हैं—दोनों ही समान स्नेह की पात्री हैं। तेरे समान अज्ञानी दूसरा कोई नहीं है!"

इस प्रकार दुर्योधनका तिरस्कार करके, स्नेहके साथ सांत्वनापूर्ण बातोंसे वे द्रौपदीको समझाने लगे,—वत्से—"मैं तेरा क्लेश सुनकर, अपने पुत्रोंके ऊपर अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ हूँ। तू बड़ी सुशीला और साध्वी है। यातना पाकर भी, अभिशाप द्वारा मेरे दुर्विनीत लड़कों को तूने अबतक विपद्में नहीं डाला, इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। तू इस कुलकी पतोहू हुई है, इससे भरत-कुल की प्रतिष्ठा बढ़ी है। तूने क्लेशित होकर भी धर्म्मपथ नहीं छोड़ा, यह सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अतएव तेरी जो इच्छा हो, सो वर माँग। तुझे इच्छानुसार वर देकर मैं शान्त-हृदय होना चाहता हूँ।"

द्रौपदीने श्रद्धा दिखाते हुए कहा,—"दयावर! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे पाँचों पति दासत्व-बन्धनसे मुक्त हों; जिससे आपके पुत्र इन महात्माओंको अब दास कहकर न पुकारें।" धृतराष्ट्रने कहा,

"वत्से! मैंने तेरी इच्छानुसार वर दिया। सुभगे! तू जैसी शान्त-स्वभावा है, उससे केवल एक वर देनेसे तेरे समुचित सम्मानकी रक्षा नहीं होती। अतएव तेरे पति जिन-जिन विषयोंमें स्वत्वविहीन होगये हैं, वे सभी विषय पाकर पहलेके समान स्वत्व-युक्त हो जायँ। तेरा सदाचार और स्वामि-भक्ति देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ; अतएव तू फिर दूसरा वर माँग।" द्रौपदीने बड़े विनीत भावसे कहा,—"दयावर! लोभ अनर्थका हेतु और अधर्मका कारण है,अतएव मैं दूसरा वर नहीं चाहती। विशेषतः, शास्त्रकारोंने क्षत्रियोंकी स्त्रियोंको दो वरसे अधिक वर माँगनेका अधिकार नहीं दिया है। आपके अनुग्रहसे मेरे स्वामियोंने दारुण दासत्व-शृङ्खल-बन्धनसे मुक्ति पायी। वे स्वाधीनताके साथ अब धर्म्मानुष्ठान कर सकेंगे, इसीसे हम लोगोंका यथेष्ठ कल्याण होगा।"

तब कर्णने कहा,—"हमलोगोंने जितनी गुणवती स्त्रियोंके उपाख्यान सुने हैं, उनमें कोई स्त्री द्रौपदीके समान स्वामीका उपकार नहीं कर सकी है। पाण्डव दुस्तर विपद्-सागरमें निमग्न हो रहे थे, पाञ्चालीने नौका-स्वरूप हो, उन लोगोंका उद्धार कर लिया। द्रौपदीके गुणोंसे पाण्डवोंका छुटकारा हो गया; यह इन लोगोंके लिये बड़े गौरव की बात है!"

असमर्षण-स्वभाव भीमसेनने कर्णका कुत्सावाक्य सुन कर सिंहके समान गर्जकर कहा,—"हाय! पाण्डवोंके जीवन को धिक्कार है! स्त्रीही हम लोगोंको छुड़ानेवाली हुई!

धृतराष्ट्र—वत्से ! मैंने तेरी इच्छानुसार वर दिया ।

(पृ० ६२)

NARSINGH PRESS CALCUTTA.

अर्जुन! इस वार तुम मुझे मत रोको, यदि दूसरेकी भुजाका बल जाननेवाले भीष्म या आचार्य्य कुछ कहते, तो उससे मैं दुःखी न होता। शूरंमन्य जघन्य मनुष्यकी बात सर्वथा असह्य है! धनञ्जय! इस सभामें जो-जो हमलोगोंके शत्रु हैं, उन सबको मैं अभी यमराजके घर भेजता हूँ; युधिष्ठिर अकण्टक राज्य-भोग करें।" हस्तिपक—महावत जिस प्रकार मदमत्त गजराजका निवारण करता है, उसी प्रकार राजा युधिष्ठिरने "शान्त हो," कह-कर भीमको वारण किया। उस समय रोष-वश, भीमके शरीरसे ज्वालामुखी पर्वत से धातु निकलनेके समान स्वेद-स्रोत प्रवाहित होने लगा।

इसके बाद राजा युधिष्ठिरने विनीत भावसे धृतराष्ट्रसे कहा,—"महाभाग! इस समय हम लोगोंको क्या करना चाहिये? आप हम लोगोंके गुरु और ईश्वर हैं। हम लोग सदा आपको आज्ञाके वशवर्त्ती होकर रहना चाहते हैं।" धृतराष्ट्रने कहा,—"वत्स! मेरी आज्ञासे तुम धन-जन लेकर सुख-स्वच्छन्दतापूर्व्वक राजधानीमें जाकर अपने राज्यका शासन करो। वत्स! तुम धर्मज्ञ हो, धर्म्मका मर्म्म तुम्हीं समझते हो, और उसके अनुसार चलते हो। तुम बड़े विनीत हो, तुम्हारे सभी कार्य्य विनय-भूषित होते हैं। क्षमा-गुणका मूल्य तुम्हें ही मालूम है। तुममें सहिष्णुता-शक्ति इतनी अधिक है, कि वज्र गिरने पर भी तुम विचलित नहीं होते। तुम अत्यन्त उदार-गुण-सम्पन्न हो; इसलिये शत्रुकृत वैर-आचरणको

मनमें स्थान मत देना। दुष्ट-स्वभाव शत्रुओंका भी दोष त्याग कर उन लोगोंके गुणका स्मरण करो; परोपकार-बुद्धिसे अपकारीके ऊपर भी सदय व्यवहार करो। किसीकी मान-मर्यादा का उल्लङ्घन मत करो। तुम्हारे इन सब असाधारण श्रेष्ठ गुणोंका कीर्त्तन अबतक सभी भले आदमी कर रहे हैं। गुरु-शुश्रूषा, गुरु-वाक्यमें आस्था, गुरु-निर्देशवर्त्तिता प्रभृति अच्छे-अच्छे गुण तुममें कूट-कूट कर भरे हैं। तुम अपने इन सब अच्छे-अच्छे गुणोंसे मेरे दुर्विनीत दुर्बोध लड़कोंके असदाचरण का ख़याल मत करना। मैंने केवल परीक्षाके लिए तुम लोगोंको इस सुहृद्-द्यूतमें बुलाया था। उसको दुराचारी इतना बढ़ा देंगे, यह मैंने नहीं सोचा था। सभी कामोंमें भाग्य ही बलवान् है। किस दिन, किस समय, किसके भाग्यमें क्या घटेगा, यह कौन कह सकता है? एकही काम करके कोई सुखी और कोई दुःखी होता है। जो सुखी होता है, वह भाग्यको शुभ और जो दुःखी होता है वह भाग्यको बुरा समझता है। फलतः, भाग्यमें एक ऐसी सम्मोहिनी शक्ति है, कि वह अप्रतिकार्य्य-विषयकी ओरसे मनुष्योंके मनोवेगको निवारण कर देती है। वत्स! और अधिक मैं अब तुमसे क्या कहूँगा? तुममें धर्म्म, धनञ्जयमें धीरता, भीमसेन में वीरता, नकुलमें पवित्रता, और सहदेवमें गुरु-शुश्रूषा प्रतिष्ठित है; अतएव तुम लोग इस समय पूर्व्ववत् सम्मानके साथ खाण्डव-प्रस्थमें प्रस्थान करो। परस्पर सौभ्रात्र-सुखसे सुखी और सदा धर्म्मानुरागी होओ।"

राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार युधिष्ठिरसे कह कर, वास-भवनको चले गये। युधिष्ठिर भी अपनी राजधानीको जानेकी तय्यारी करने लगे।

तीसरा परिच्छेद ।

फिर जूए का खेल ।

पाण्डवों का वनवास; काम्यक वन में प्रवेश ।

राजा दुर्योधन धृतराष्ट्रके वर-प्रदानसे हताश हो गये। वे क्रोधित हो पिताके पास पहुँच कर बोले, "महाराज! बृहस्पतिने सुरपतिको जो उपदेश दिया था, उसे आप नहीं जानते; इसीलिये वर देकर आपने पाण्डवोंको पूर्ण-मनोरथ कर दिया। देवताओंके आचार्य्यने कहा था, 'जिस किसी उपायसे हो, शत्रुकी सम्पत्ति को आत्मसात् करना ही नीति जाननेवालोंका प्रधान कार्य्य है।' हम लोग उसी स्वर्गीय नीतिका प्रयोग कर सफल-मनोरथ हुए थे। आपने वर देकर मेरा सब कार्य्य व्यर्थ कर दिया। पाण्डव सभाके बीच जिस प्रकार अपमानित हुए हैं, उससे वे अब कभी हम लोगोंको क्षमा नहीं करेंगे। कोई पुरुष अपनी स्त्री का अपमान कभी नहीं भूल सकता। अवसर पातेही वह उसका बदला लेता है। हम लोग न तो पाण्डवोंके समान बलवान ही हैं और न धनवान ही। यदि किसी कौशलसे उन लोगोंका धन अपने अधिकारमें कर, उसके द्वारा महो-

पालोंको वशीभूत कर, हम लोग सहाय-बल लाभकर सकें, तभी हम लोगोंका निस्तार होगा; नहीं तो हम लोगोंकी जान नहीं बचेगी। सुना है, भीम और अर्जुन अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्धके लिये अग्रसर हो रहे हैं; नकुल और सहदेव चर्म्म-वर्म्म पहन कर युद्धार्थ सज रहे हैं। अतएव आप फिर युधिष्ठिरको द्यूतके लिये बुलवाइये; सिवा इसके दूसरा कोई अच्छा उपाय नहीं है। इस बार हम लोग वन-वासको शर्त पर उन लोगोंके साथ जूआ खेलेंगे। उन लोगोंको या हम लोगोंको, जूएमें परास्त होनेपर, बल्कल और मृगचर्म्म पहन कर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात-वास करना पड़ेगा। इतने समय तक धन-जनपूर्ण वसुन्धरा जीतनेवालेके वशमें रहेगी। इस शर्त पर यदि हम लोगोंकी जीत हो गयी, तो अन्तमें हम लोग पाण्डवोंको जीत लेंगे। यदि बहुत दिनों तक राज्य हम लोगोंके अधिकारमें रहेगा, तो उसकी आयसे हम लोग बहुत-कुछ मित्र-बल इकट्ठा कर लेंगे। हम लोग इस प्रकार पाण्डवोंसे प्रबल हो जायँगे और तेरह वर्ष तक इस नियमका पालन करनेसे पाण्डव निर्बल हो जायँगे। जूएमें हम लोगोंके जीतनेकी जितनी सम्भावना है, उतनी सम्भावना पाण्डवोंके जीतने की नहीं है। इस विचारसे फिर जूएका अनुष्ठान करना नितान्त आवश्यक हो रहा है। पासेके सिवा मनोरथ-सिद्धिका दूसरा कोई सहज उपाय मैं नहीं देख रहा हूँ। अतएव आप जूएके

वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ेगा। तेरह वर्ष के बाद वे अपनी धन-सम्पत्ति और राज्य ले लेंगे। इतने समय तक जेता जीती हुई सम्पत्ति का उपभोग करेंगे। द्यूत-नियम पालन करने पर, हारा हुआ व्यक्ति हारी हुई वस्तुओंपर अपना अधिकार प्राप्त कर लेगा। अतएव इसी शर्तपर हम लोग खेल आरम्भ करें।"

युधिष्ठिर ने कहा,—"राजन्! मैं धनके लोभ या आमोदके लिये इस क्रीड़ामें प्रवृत्त नहीं होता। केवल अवश्य पालनीय गुरु-निर्देश और क्षत्रिय-धर्मके नियोगसे मैं खेलूँगा। इस विषयमें अदृष्ट प्रधान है। अदृष्टमें जो है, वही होगा। अतएव द्यूतमें जो शर्त आपलोगोंको स्वीकृत हो, वही मुझे भी स्वीकृत है।" शकुनिने उल्लिखित शर्तको पुनरुक्ति-दोषसे दूषित कर पासा फेंका। इस बार भी जयश्री उसीके भाग्यमें थी। पराजय होनेसे युधिष्ठिरकी मुखश्री कुछ उदास हो गयी।

अनन्तर पाण्डवोंके वनवासोचित वेश धारण कर, गमनोन्मुख होने पर; दुःशासन गर्व्वपूर्ण वचनोंसे पाण्डवोंका अपमान करके, अभिमानी सहोदरका भाई कह कर ही शान्त नहीं हुआ। वह अन्त में भीमसेन को बलीवर्द-बैल कह कर, हाथ चमका-चमका कर नृत्य करने लगा। उस समय अमर्षण-स्वभाव भीमने करतल मर्दन करते हुए कहा,—"रे दुःशासन नीच! तू कपट द्यूतमें सम्पत्ति हरणकर गर्व कर रहा है! तू निश्चय जान,

भीम द्वारा ही तेरा गर्व्व खर्व होगा। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, यदि सम्मुख-संग्राममें तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण कर, कवोष्ण रुधिर न पान करूँ, तो मेरी सद्गति न हो। मैं सबके सामने कहता हूँ, धृतराष्ट्र के वंश का मैं ही नाश करूँगा और द्यूतोपजीवियों को यमराज के घर भेजूँगा।" इस प्रकार भीम पूर्व-प्रतिज्ञाको दृढ़ कर बड़े भाई के पीछे-पीछे जाने लगे। क्षुद्राशय दुर्योधन पाण्डवों के पीछे से अङ्ग-भङ्गी कर, उन लोगों की गति का अनुकरण करने लगा।

भीम ने सिंहावलोकन से दुर्योधन की भाव-भङ्गी देख, अपने तईं अपमानित समझ, क्रोध के साथ ग्रीवाभङ्गि-पूर्व्वक कहा,—"मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। विधाता ने भीम के हाथ ही तुम लोगों का संहार होना लिखा है; इसी से तुम लोग बार-बार मुझे कुपित कर रहे हो। दुराचारी! मेरी चाल का अनुकरण कर, तुम लोग मेरा कुछ भी नहीं कर सकते। मैंने जो मुँह से कहा है, वही कार्य द्वारा करूँगा भी। चाल की नक़ल करने में नट बड़े होशियार होते हैं; यह भले आदमियों का काम नहीं है। इस से वीरता नहीं प्रकट होती। पाखण्डियो! यदि क्षमता हो, तो मेरे कार्य का अनुकरण करो। जरासन्ध के सन्धिस्थान की अपेक्षा तुम लोगों की जङ्घायें दृढ़ नहीं हैं। उनके तोड़ने के लिये गदा की पूरी चोट की भी ज़रूरत नहीं होगी। तेरह वर्ष के बाद तुम्हारा प्राण संहार करूँगा, यह कह कर प्रतिज्ञा की है;

इसी लिए तुम अब तक जीवित हो, यही अपना सौभाग्य समझो। अपातत: प्रतिज्ञा का पुनरुल्लेख कर मैंने क्रोधानल को शान्त किया। 'मैं फिर सबके सामने कहता हूँ, दुराचारी दुर्योधन को जङ्घा को मैं इसी गदा से चूर्ण-चूर्ण कर दूँगा। मृगेन्द्र के समान दु:शासन-पशु का शोणित पान करूँगा। अर्जुन कर्ण को, सहदेव अक्षधूर्त शकुनिको मारेंगे।" अर्जुन ने कहा,—"भीम शान्त होओ। उत्तमाशय लोग वाक्य-द्वारा कोप प्रकाश नहीं करते; कार्य-द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं। तेरह वर्ष के बाद हम लोग जो करेंगे, उसे सारा संसार देखेगा। क्षत्रियों की रीति के अनुसार मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ, कि तेरह वर्ष व्यतीत होने पर दुर्योधन सम्मान के साथ मेरा राज्य नहीं लौटा देंगे, तो मैं रणस्थल में कर्ण को मारूँगा। यदि हिमाचल विचलित, जलराशि परिशुष्क, अग्नि निस्तेज, सूर्य निष्प्रभ, और शीतांशु खरांशु हो जायँ, तोभी मेरी प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं होगी।" अर्जुन का कहना समाप्त होने पर सहदेव ने शकुनि के मारने की प्रतिज्ञा कर सभासदों को पुकार कर कहा,—"शकुनि ने पाण्डवों को अक्षज्ञान दिया है, रणाङ्गण में वह उन लोगों को जीवनघाती शर समझ रक्खे। यह दुरात्मा यदि क्षात्र-धर्मानुसार समर-भूमिमें उपस्थित हुआ, तो भीमसेनने जो कहा है, उसे मैं अवश्य पूर्ण करूँगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं।" सहदेव के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने के बाद नकुल ने अङ्गीकार-पूर्व्वक कहा,—"दु:शासन ने

दुर्योधन की सीख में आकर, द्रौपदी को जली-कटी बातें कही हैं। मैं प्रतिज्ञा करताहूँ, कि धर्म्मराज की आज्ञा से पृथ्वी को धार्त्तराष्ट्र-शून्य करूँगा।" यह प्रतिज्ञा करने के बाद सबने बड़े भाई का अनुगमन किया। युधिष्ठिर ने द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, भीष्म, विदुर और अन्यान्य कौरव-श्रेष्ठों को पुकार कर कहा, "आप लोग प्रसन्न चित्त से मुझे विदा करें; जिससे मैं इस दुष्कर व्रत को पालन करके पुनः आप लोगों का साक्षात्कार-सुख अनुभव कर सकूँ।" युधिष्ठिर की विनय-पूर्ण बात सुनकर, सबने लज्जा से अपने-अपने मुख अवनत कर लिये; किसीने ज़बान भी न हिलाई।

अनन्तर धर्मार्थपारदर्शी विदुर ने युधिष्ठिर से कहा,—"कुन्ती राजनन्दिनी हैं, सदा सुखमें उन्होंने अपने दिन बिताये हैं। वे जानती ही नहीं, कि दुःख किस चिड़िया का नाम है। विशेषतः इस समय वे वृद्धा होगयी हैं। इस अवस्था में वन-गमन का क्लेश उनसे कभी न सहा जायगा; अतएव वे मेरे घरमें रहें।" युधिष्ठिर ने विनय-पूर्व्वक कहा,—"महाभाग! आप हम लोगों के पितृव्य और पिता के समान पूजनीय हैं। आप जो कहते हैं, वह हम लोगोंको शिरोधार्य्य और अवश्य पालनीय है। आप हम लोगों के परमहितैषी हैं। हम लोग भी आपकी आज्ञाधीन हैं। यदि औरभी कुछ हम लोगों के लिये कहना हो, तो आज्ञा दीजिये।" विदुर ने कहा,—"वत्स युधिष्ठिर! तुम सुशील और बड़े धार्मिक हो और उपदेश देने के उपयुक्त

पात्र हो। तुम्हें अब अधिक उपदेश देने का प्रयोजन नहीं।

"धर्म्मपथ-प्रदर्शक के सिवा उपदेश-वाक्य और कुछ नहीं है; जो नीति धर्म्मकी अनुगामिनी नहीं है, उसकी सुनीति में गणना नहीं हो सकती। नीति न्यायपथ की प्रवर्त्तिका मात्र है। न्यायपथाचारी मनुष्य धार्मिक है। न्यायपथाचारी मनुष्य यथेच्छाचारी नहीं हो सकता। न्याय-बन्धन उसको संयत करके रखता है। इसलिये कपटाचारी, न्यायाचारी को, सहज में पराजय करता है। इस प्रकार के पराजय से न्यायपरायण का अयश नहीं होता; किन्तु अत्याचारी और अन्यायाचारी जेता के अयश की घोषणा होती है। हे न्यायपरायण! इस प्रकार के पराभव से आत्मा को दुःखी मत करना। तुम धर्म्मजयी हो; धनञ्जय रणजयी हैं; भीम पराक्रम-जयी हैं, नकुल अर्थजयी हैं; सहदेव इन्द्रिय-जयी हैं और ब्रह्मवित् धौम्य पुरोहित मन्त्रविजयी हैं। इन सब विजयियों को कौन पराजित कर सकता है? हे महोदय! तुमने बुद्धि में बृहस्पति को, नीतिज्ञता में शुक्राचार्य्य को, सन्तोष में सुरपति को, संयम में वरुण को, कोपमें कृतान्त को, दानशीलतामें धनपति को, तेज में दिवाकर को, बलमें पवनको, सहिष्णुता में पृथ्वी को, गाम्भीर्य्य में समुद्र को और धर्मनिष्ठामें ऋषियों को पराजित किया है। अतएव वत्स! यदि वन में कोई विपद् आवे, तो स्वीय स्वभावसिद्ध अविचलित बुद्धि-बलसे उससे छुटकारा

द्रौपदी ने सास से वनमें जाते हुए पतियों के साथ जाने देने के लिये प्रार्थना की। (पृ० ९५)

NARSINGH PRESS CALCUTTA.

पाना।" युधिष्ठिर ने "जो आज्ञा" कह कर, भीष्म-द्रोण प्रभृति को प्रणामकर, द्रौपदी और भाइयों के साथ पुर-द्वार अतिक्रम कर, उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

द्रौपदी ने अभिवादन-पूर्व्वक, उदास मुँह किये, कातर आंखों से आंसू गिराते हुए, सास से वन में जाते हुए पतियों के साथ जाने देने के लिये प्रार्थना की। कुन्ती की आँखें आँसुओं से भर आईं। उन्होंने गद्गद वचन से कहा,—"वत्से! तू साध्वी है, तुझे स्त्रियों के अच्छे-अच्छे कामों का पूर्ण ज्ञान है। पति की कैसी सुश्रूषा करनी चाहिये, यह भी तुझे मालूम है। भवितव्यता अवश्यम्भाविनी है। यह समझकर तू शोकाकुल न होना। पतियों के पास रहकर तू वन में भी सुख से रहेगी। न्यायपरायण स्वामी के निकट रहनेसे स्त्रियों को कोई अभाव नहीं रहता। वृकोदर तेरे साथ रहेगा, तू जङ्गल में निर्भय रहना। तेरी जैसी पतीव्रता से कुरुकुल का मुख उज्ज्वल हुआ है। कौरव तेरे कोपानल से जलकर खाक नहीं हो गये, इसे वे अपना सौभाग्य समझें। जिन्होंने तुझे क्लेश दिया है, वे कभी सुख से न रह सकेंगे। पापात्मा पहले सुखी अवश्य होते हैं; पर अन्त में अशेष क्लेश पाते हैं। वत्से! तुम लोगों के धर्म पालनार्थ वनमें जानेसे वही सेवित धर्म्म शीघ्र ही तुम लोगोंका मङ्गल करेगा। वत्से! तुझसे अब अधिक मैं क्या कहूँ? तेरे स्वामी चिरानुकूल हैं; तू भी उन लोगों के प्रतिकूल नहीं चलती। तू विशेष यत्नसे सहदेव की सुश्रूषा करना। बच्चा

सहदेव सदा सुख-विलास चाहता है। इस वनवास से उसे कोई कष्ट न होने पावे।" "आर्ये! अभिवादन करती हूँ," कह कर द्रौपदी ने कुन्ती के चरण स्पर्श कर वन्दना की और अविरल अश्रुवारि विसर्जन करने लगी। कुन्ती ने अञ्चल द्वारा उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये और स्वयं भी आँखों से आँसू गिराने लगी। अनन्तर आलुलायित-केशा दीनवेशा द्रुपद-दुहिता के पीछे-पीछे कुछ दूर तक आयी।

उसके पुत्र राजवेश परित्याग कर, मुनिवेश धारण कर, अधोवदन किये जा रहे हैं। उनके मित्र विलाप और परिताप कर पीछे-पीछे दौड़े जाते हैं; और शत्रु आनन्द से उनको घेर कर कोलाहल करते हैं, यह दृश्य देखते ही सुतवत्सला कुन्ती रोने लगी। बड़े दुःख से उसने कहा,—"हा दग्धदैव! तेरे मनमें क्या यही था! तैंने मेरे इन सुकुमार बच्चों को वनवास क्यों दिया? हा धर्म! तुम्हारे भली भाँति अनुष्ठान करने का फल क्या यह वनवास ही है? क्या मेरे बच्चों की यह दुर्दशा दिखाने के लिये ही ब्रह्मा ने मुझे इतने दिनों तक जीवित रक्खा है? मैंने पूर्व्व जन्म में बहुत-कुछ पाप किये हैं, इसी से मेरे हृदय-धन आज वन में जा रहे हैं! वत्सगण! मैंने बड़े कष्ट से तुम लोगों को पाया है; बड़े कष्ट से तुम लोगों का लालन-पालन किया है। मैंने आशा की थी, कि तुम लोगों के आश्रयमें रह कर, अन्तिम अवस्था में सुखी होऊँगी। जिसने मेरी इस आशा को निराशा में परि-

पित कर दिया, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। वत्सगण! मैं तुम लोगोंको वनमें भेजकर स्वयं घरमें नहीं रह सकती। हा वत्से! द्रुपदनन्दिनी! तू राजा की लड़की और राजाकी पतोहू होकर, रुक्षकेश और हीनवेश से देश-देश पर्यटन करेगी, यह सोचकर मेरा हृदय आज विदीर्ण हो रहा है। तेरी सजल आँखें और उदास मुख देखकर, मेरे प्राण अस्थिर हो रहे हैं। हा कृष्ण! तेरे अनुगामी पाण्डव विपद्-सागर में डूब रहे हैं! आशु इन लोगों का उद्धार कर और अपने विपद्-भञ्जन नाम का गौरव रख। भीष्म प्रभृति महात्माओं के होते क्यों ऐसी विपद् आयी? हा महाराज पाण्डु! शत्रुओं ने छल करके तुम्हारे पुत्रोंको वनवास कराया!" कुन्ती इस प्रकार विलाप और परिताप करने लगी। अश्रुजल से उसकी सारी साड़ी तर हो गयी। पाण्डवोंने सान्त्वना-पूर्ण बातों से माताको सुस्थचित्त कर, अभिवादन-पूर्व्वक अरण्य को प्रस्थान किया। विदुर आश्वासन प्रदान-पूर्वक कुन्ती को अपने घर ले गये। वह विदुर के घर रहकर, अपने लड़कों की जो मंगल-कामना करती थी, उसी से उसका मनोदुःख बहुत-कुछ कम होजाता था।

इधर पुरवासी, पाण्डवों का वनवास-वृत्तान्त सुनकर, यत्परोनास्ति दुःखी हुए और दुर्योधनसे विरक्त हो कहने लगे,—"जो राजा अपने स्वार्थ के लिये आत्मीय को ठगता है, उसके राज्य में रहने से प्रजाओं के धन-मान कुछ भी निरापद नहीं रह

सकते। जिन्होंने छलसे आत्मीयों का सर्वस्व हरण कर लिया, वे प्रजाओं की धन-सम्पत्ति निरापद रक्खेंगे, इसकी सम्भावना नहीं। राजा दुर्योधन स्वभावत: अहङ्कारी, अर्थ-लुब्ध और नीच-प्रकृति है। उस पर भी तुर्रा यह कि, पापानुरागी शकुनि और कर्ण प्रभृति उसके कार्योपदेशक मन्त्री हैं। इससे मालूम होता है, कि जिसको बुरे मन्त्री मिले हैं, उस दुराचारी दुर्योधन के शासन में समूचा राज्य अवसन्न हो जायगा। जहां बुरे मन्त्री और दुष्ट राजा अपना प्रताप प्रकाश करते हैं, वहां रहने से प्रजा को सुख-स्वच्छन्दता का अक्षुण्ण रहना तो असम्भव है ही : प्रजा जाति-मान की रक्षा करके थोड़ी देर निरुद्विग्न भी नहीं रह सकती। अतएव जहाँ धर्म्मपरायण प्रजावत्सल पाण्डव गये हैं, हम लोग भी वहीं चलकर रहें।" यह स्थिर कर सभी पुरवासी पाण्डवोंके पास पहुँच गये और हाथ जोड़कर कहने लगे,—"महोदयगण! आपलोग हम हतभागोंको छोड़कर कहीं न जाइये। आप लोग जिस स्थान पर जाइयेगा, हम लोग भी वहीं चलेंगे। हमलोग दुराचारी दुर्योधनके अधिकारमें रहकर निरापद न रह सकेंगे। जिस दुरात्माने स्वजनके साथ दुर्व्यवहार किया है, वह दूसरेके साथ सदय व्यवहार करेगा, यह कभी सम्भव नहीं। उसका असदाचार निराकरण करनेमें हम लोग भी असत्पथ का अवलम्बन करेंगे और इस प्रकार हम लोग भी बुरे होकर असत्कार्य के अनुष्ठानमें प्रवृत्त होंगे। जिस प्रकार रोग संक्रामक होता है; उसी प्रकार गुण-दोष भी संक्रा-

मक होते हैं। मनुष्य, असत्संसर्गसे असत् और सत्संसर्गसे सज्जन हो जाता है। जिस प्रकार कुसुमके संसर्गसे जल और वस्त्रादि सुगन्धित हो जाते हैं; उसी प्रकार गुणो के संसर्गसे निर्गुण भी गुणवान् हो जाते हैं। विशुद्ध कुल, धर्म्म, विद्या और महत्कर्म्म मनुष्यको महान् बना देते हैं। ये सब श्रेष्ठ गुण आपलोगोंमें हैं, इसीसे आपलोग महात्मा हैं। जो सद्गुण धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्षके कारण हैं; आपलोग उन्हीं सब गुणोंके आधार हैं। महात्माओंका सहवास शास्त्रा-लोचनाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है, इसलिये आप लोगोंके साथ रहनेसे हम लोग उन सब सद्गुणोंको सीख सकेंगे; इसीसे हम लोग आप लोगोंके साथ रहना चाहते हैं। कृपाकर हम लोगोंको भी अपने साथ रखिये।"

युधिष्ठिरने बड़े आदरके साथ उन लोगोंसे समयोचित बातें कर, उन्हें प्रसन्नकर दिया और कहा,—"हम लोग आज धन्य हो गये, आप लोगोंके वचनामृतकी वर्षासे अभिषिक्त हो गये! आप लोग अनुरागके वश होकर सहवासी होना चाहते हैं, इससे हम लोग यत्परोनास्ति प्रसन्न हुए हैं। इस समय भाइयोंके साथ मैं आप लोगोंसे जो कहता हूँ, उसे सुनिये; और जो कहा जाय उस पर विश्वास करके वही कीजिये। पितामह भीष्म, पितृस्थानीय धृतराष्ट्र और मान-नीय विदुर, माता कुन्ती और अन्यान्य बन्धु-बान्धव हस्तिना-पुरमें हैं। वे हम लोगोंके वियोगसे अत्यन्त दुःखी हुए हैं।

हम लोग उन लोगोंके रक्षणाविक्षणका भार आप लोगोंके ऊपर सौंपकर निश्चिन्त हुए हैं। आप लोग यही भार अपने ऊपर लेकर नगरको लौट जाइये, इसीसे हम लोग यथेष्ट उपकृत होंगे।" प्रजा, राजा युधिष्ठिरके सौजन्यपूर्ण व्यवहार और शिष्टाचारसे, वन-गमनकी इच्छा परित्याग करके उन लोगोंकी गुणावली गाती हुई, दुःखितान्तःकरण से लौट आयी। राजा युधिष्ठिर द्रौपदी और भाइयोंके साथ प्रमाण नामक वटवृक्षको लक्ष्य कर, गङ्गाके किनारे-किनारे चले।

धीरे-धीरे सन्ध्या-काल पहुँच गया। वारुणीसेवी ताम्रवर्ण रविने, मानो गिरनेके भयसे, करद्वारा अस्ताचलके शिखर को पकड़ लिया। सन्ध्याने, रागान्विता होनेपर भी, निस्तेज पतिका करावलम्बन किया। स्वच्छाशय वारिवाह लोक-साक्षी तेजोनिधिका व्यवहार देखकर क्रोधसे लोहितवर्ण हो गया; तिमिरारिको प्रताप-हीन देखकर सदा के वैरी तिमिर-दलने गगनमण्डल पर आक्रमण किया। उसकी सहायतासे दो एक नक्षत्र आकाशमें चमकने लगे। द्विजराज—चन्द्रमा ने ग्रहराज—सूर्य्य को दूरस्थ समझ, सुयोगसे पूर्व दिशाको अधिकृत कर लिया। पराजित सैन्यके समान अन्धकार-समूह ने गिरि-गह्वर में आश्रय लिया।

राजा युधिष्ठिरने सायन्तनी क्रिया समाप्त कर, केवल गङ्गा का निर्मल जल पानकर, प्रमाण वट-वृक्षके मूलमें, वह रात बितायी। साथके ब्राह्मणोंने कथा और आश्वासन-वाक्यों द्वारा

राजा युधिष्ठिर ने प्रमाण वटवृक्ष के मूल में वह रात बितायी। ब्राह्मणोंने आश्वासन वाक्यों-द्वारा उनके चित्तका खेद दूर किया।

(पृ० ८०)

NARSINGH PRESS CALCUTTA

उनके चित्तका खेद दूर किया। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रातः-क्रिया समाप्त करनेके बाद, ब्राह्मणोंने कृतक्रिय युधिष्ठिर के आगे खड़े हो, शान्ति-मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद दिया। राजा ने भी विनीत भावसे आशीर्वचन ग्रहण-पूर्वक हाथ जोड़कर कहा,—"विप्रगण! हम लोग इस समय वनमें जा रहे हैं। अरण्य हिंस्रजन्तु-आकीर्ण अत्यन्त भयावह स्थान है। वहाँ फल-मूल और आमिषके सिवा और खानेकी वस्तुएँ नहीं मिलेंगी। वहाँ जानेसे आप लोगोंको अत्यन्त कष्ट होगा; आप लोगों को क्लेश होनेसे हम लोगोंको नरक होगा; अतएव आप लोग यहाँ से राजधानीकी ओर लौट जाइये।"

विप्रोंने कहा,—"महाराज! हमलोग आपका साथ किसी प्रकार नहीं छोड़ सकते। हम लोग सभी फल-मूल खाकर जीवन निर्वाह करेंगे। विधि-विहित होमके द्वारा आपका अमङ्गल दूर करेंगे; और यथासमय मनोरम उपाख्यानों द्वारा आपका चित्त-खेद अपसारित करेंगे। हम लोग अच्छे राजा के अनुगत होकर रहनेवाले हैं। जहाँ अच्छे राजा रहते हैं, वहीं हम लोग रहते हैं। दुराचारी राजाके अनुरक्त हम लोग नहीं होते। वैसे राजाके देशमें भी नहीं रहते। आप कृपा-पूर्वक हम लोगोंको भी अपने साथ ले लीजिये! हम लोगोंको हरगिज़ न छोड़िये।" इन सब बातोंको सुन राजा युधिष्ठिर ने वाष्प गद्-गद् स्वरसे कहा,—"आप लोग स्वयं अन्न लाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे, यह हम लोगोंसे देखा न जायगा।

पापात्मा दुर्योधन! तेरे राज्य-भोगको धिक्कार है!" यह कह कर वे शोक और मोहसे अभिभूत हो गये।"

राजा युधिष्ठिरको ऐसी अवस्थामें देखकर, सांख्य-तत्त्व-विशारद शौनक नामक ब्राह्मणने कहा,—"महाराज! शोकके सहस्रों कारण और भयके सैकड़ों हेतु विद्यमान हैं। वे मूढ़ व्यक्तियोंपर ही आक्रमण करते हैं और वेही उनसे अभिभूत हो जाते हैं। वे पण्डितों पर आक्रमण नहीं कर सकते और वे उनसे अभिभूत भी नहीं होते। आप बुद्धिमान हैं, आपकी बुद्धि भी शास्त्रानुसारिणी है। यदि आप जैसा मनुष्य भी शोक-मोहसे अभिभूत हो, तो मूर्ख और पण्डितमें अन्तर ही क्या रह जायगा? अर्थनाश, आपद, शारीरिक और मानसिक कष्ट उपस्थित होने पर; यदि मूर्ख और पण्डित दोनोंही अधीर हों, तो धीरता किसके आश्रयमें रहेगी?

"सारा संसार शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारके दुःखों से परिपूर्ण हो रहा है। इष्टनाश, अनिष्टापात और व्याधि,— यही तीनों शारीरिक और मानसिक दुःखोंके कारण हैं। स्नेह, वस्तु विशेषको इष्ट कह कर प्रतीति उत्पन्न करा देता है। जिस वस्तु पर जितना ही स्नेह होता है, वह वस्तु उतनीही अधिक इष्ट होती है। इष्ट वस्तुका नाश होनेसे शोकोत्पत्ति होनेके कारण, इष्ट वस्तुके रक्षणावेक्षणमें समधिक प्रयास होता है। अतएव स्नेह इन सब दुःखोंका आदि कारण कहा जा सकता है। यदि किसी वस्तु पर स्नेह न होता, तो कोई

वस्तु नष्ट न हो सकती। यदि कोई वस्तु इष्ट न होती, तो उसके नष्ट हो जाने पर भी दुःख न होता। जीवधारी केवल स्नेह के मारे ही, शोकतापसे निपीड़ित हो, अशेष क्लेश भोग करते हैं। स्नेहसे केवल दुःख होता है, सो बात नहीं है; उससे मनमें विकार भी आता है। इस प्रकारके विकार से विषयासक्ति उत्पन्न होती है। चित्तका यह गुरुतर दोष है। जिसप्रकार कोटरस्थित वह्नि—अग्नि-तरुका सारासार अंश नष्ट करके अन्तमें उसको भस्मसात् कर देता है; उसी प्रकार विषयासक्ति धर्म और अर्थको विध्वंस करके, पुरुषको व्यतिव्यस्त कर देती है। किन्तु विषयच्युत होनेसे ही मनुष्य विषयत्यागी होता है, यह कोई बात नहीं है। विषय-वासनाका परित्याग करनेसे ही मनुष्य वास्तविक विषय-त्यागी होता है। जो मनुष्य विषयमें निर्लिप्त रहता है, विकारका कारण निकटस्थ होनेपर भी, अविचलित-चित्त और अनासक्त हो कर विषय-सुख सम्भोग करता है, पण्डित उसीको विषय-त्यागी कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। अतएव जहां तक हो सके, स्नेह को संयत कीजिये इससे मानसिक कष्टमें बहुत कमी होगी।

"पूर्व्वसत्रमें सतर्क होनेपर अनिष्टापात हो सकता है। यदि हो, तो थोड़े परिश्रमसे उसका प्रतिविधान किया जा सकता है। अनिष्टापातके समय विकल-चित्त या अभिभूत होना नितान्त दूषणीय है। अभिभूत मनुष्य पर विपद् सम्पूर्ण रूपसे आक्रमण करती है, वह उसका प्रतिविधान नहीं कर सकता।

"निदान स्थिर करके, चिकित्सा-विधान करनेसे ही व्याधिका प्रतीकार हो सकता है; इसी लिये बुद्धिमान चिकित्सक पहले रोगका निदान—कारण स्थिर करते हैं; पीछे चिकित्सामें प्रवृत्त होते हैं। चिकित्साके प्रारम्भमें प्रियोक्ति और पथ्य-प्रदान द्वारा रोगीके मानसिक दुःखको शान्त करते हैं। इसके अनन्तर वे औषधि देकर रोग दूर करते हैं। इस प्रकार मानसिक कष्टके नाश होने पर, शारीरिक सन्ताप भी अन्तर्हित हो जाता है। जिस प्रकार अभितप्त बालुकासे भरे हुए घड़ेमें जल डालने से घड़े का सब जल उत्तप्त हो जाता है; उसी प्रकार मानसिक दुःख उपस्थित होने पर शरीर भी सन्तप्त हो जाता है। जिस प्रकार जलसेक द्वारा जाज्वल्यमान अनल निर्वाण किया जाता है; उसी प्रकार ज्ञान-द्वारा मानसिक दुःख विनष्ट करनेमें लोग समर्थ होते हैं। इस प्रकार आधिके प्रशमित होनेपर, शारीरिक दुःख भी शान्त हो जाता है।

"विषयकी ऐसी स्वाभाविक शक्ति है, कि उसका स्मरण या दर्शन होनेसेही अभिलाषा होती है। अभिलाषासे वासना और वासनासे भयङ्कर तृष्णा प्रादुर्भूत होकर, मनुष्यको विषम विपद् में डाल देती है। तृष्णाके वशमें पड़कर मनुष्य सतत् उद्विग्न और परिश्रान्त हो जाता है। तृष्णाका यह आश्चर्यजनक गुण है, कि तृष्णा-रज्जुमें बँधा हुआ मनुष्य चारों ओर दौड़ता फिरता है; और तृष्णा-रज्जुसे निर्मुक्त मनुष्य एकत्र अवस्थित और सर्वदा निश्चिन्त रहता है। तृष्णासे बँधे हुए मनुष्यके लिये

सौ योजन भी दूर नहीं मालूम होते। तृष्णातुर मनुष्य गिरि-लङ्घन और समुद्र-संतरणको कोई विस्मयजनक कार्य नहीं समझता। फलतः, मानव तृष्णाका आज्ञावह दास है। तृष्णा जो कहती है, मूढ़ मनुष्य उसी समय वही करनेके लिए तैयार हो जाता है। मनुष्यका शरीर साढ़े तीन हाथका होता है। इतने ही बड़े शरीरके भीतर रहने पर भी, तृष्णाके परिमाण की इयत्ता नहीं है। वही दुस्त्याज्य तृष्णा ऐसी दीर्घकालस्थायिनी है, कि बिना प्राणान्त हुए वह मानव-शरीरका पिण्ड नहीं छोड़ती; मानव देहके जीर्ण होनेपर भी वह जीर्ण नहीं होती। आश्रय का भक्षण करनेवाली आग जिस प्रकार अपने आश्रयका नाश करती है; उसी प्रकार तृष्णा भी देहक्षय करती है। काष्ठसे उत्पन्न दावानल जिस प्रकार बड़े-बड़े वृक्षोंसे परिपूर्ण वनको जला देता है; उसी प्रकार तृष्णा भी इन्द्रिय-सम्पन्न मानव-देहको जला देती है। उसमें एक और चमत्कारिणी शक्ति है। वह यह कि, वह शरीरको जलाती अवश्य है, किन्तु उसको एक बार ही भस्मसात् नहीं कर देती।

"सुख-दुःख मनुष्यको पर्य्यायक्रम से भोग करने पड़ते हैं। कोई सदा सुखी और कोई सदा दुःखी नहीं दिखता। सुख-दुःखभोग मनुष्यका प्रकृतिसिद्ध है; किन्तु मनुष्य इस अखण्डनीय प्रकृति-सिद्ध नियमके परिवर्त्तन की इच्छा करके, केवल सुख भोगकी वासना करते हैं। वे इस बातको एक बार भी नहीं सोचते, कि सदा-सर्वदा सुखही सुख हो, दुःख न

हो, यह इच्छा कभी भी पूर्ण होनेकी नहीं। जिस प्रकार एक समय पृथ्वीका एक स्थान आलोकमय और दूसरे समय वही अन्धकाराच्छन्न हो जाता है; उसी प्रकार मनुष्य भी एक समय सुखी और दूसरे समय दुःखी होते हैं। जिस प्रकार शीत-ग्रीष्म पर्य्याय-क्रमसे सह्य करने पड़ते हैं; उसी प्रकार सुख-दुःख भी मनुष्यको सह्य करना पड़ते हैं। जिस प्रकार शीतार्त्त होनेसे आतप आह्लाददायक होता है, उसी प्रकार दुःखके अन्त में सुख मधुरतर होता है। जिस प्रकार शीत-ग्रीष्म वर्षको पूरा करते हैं, उसी प्रकार सुख-दुःख भी मनुष्योंके आयुष्काल को पूर्ण करते हैं। किन्तु सुखके एकान्त वशीभूत होना उचित नहीं; और दुःखमें नितान्त अभिभूत होना भी विधेय नहीं है। केवल इनको अवश्य भोक्तव्य समझ कर इनका भोग करना चाहिये। इस प्रकार जो सुख और दुःखको भोग करनेमें समर्थ हैं, वही अप्रतीकार्य्य अनिष्टापातसे शंकित नहीं होते और उपस्थित सुखमें भी वे अनासक्त रह सकते हैं।

"आमिष जिस प्रकार नभोमण्डलमें रहने पर खेचरका, जल में रहने पर जलचरका, स्थलमें रहनेपर स्थलचरका भक्ष्य होता है; उसी प्रकार धनवान मनुष्य जिस स्थान पर रहते हैं, धनके कारण, सर्वत्र विपन्न और आक्रान्त होते हैं। किसी-किसीको तो अर्थ अनर्थका कारण हो जाता है। कोई तो अर्थका उपार्जन करनेमें और कोई धनकी रक्षा करनेमें प्राण-त्याग करते हैं। जो मनुष्य धनमें एकान्त आसक्त है, वह

अर्थके उपार्जन, उपार्जित वित्तके रक्षण और उसके परिवर्द्धनमें सर्वदा व्यस्त रहता है। यदि किसी कारण से अर्थकी हानि होती है, तो अर्थ-लोलुपके शोकतापकी सीमा नहीं रहती। देखो, धनके उपार्ज्जनमें कष्ट, वर्द्धनमें क्लेश, और रक्षणमें दुःख है। अर्थ लोभ, क्षोभ, दर्प, गर्व्व, भय और उद्वेगका मूल है; तथापि संसारमें लोग उसे सुखका मूल कहते हैं। मूर्ख ही दुःख-नाशका कारण और सौभाग्य-सेतु कह कर, अर्थ-स्वरूप शत्रुको मित्रके समान लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं। वे एक बार भी यह नहीं समझते, कि उसमें प्राण-घातिनी शक्ति है। यद्यपि व्यक्ति विशेषके हाथ पड़नेसे, उसके द्वारा संसार की शोभा और उपकार होता है; किन्तु उसकी उन्मादिनी शक्ति अन्तर्हित नहीं होती। अज्ञ पुरुष ही सभी विषयोंमें असन्तुष्ट रहते हैं; विज्ञ पुरुष सदा सन्तुष्ट रहते हैं। पिपासाकी शान्ति नहीं होती। सन्तोषसे बढ़कर दूसरा सुख नहीं है; इसीसे महात्मा संसारमें सन्तोष-सुधा पानकर चिरकाल तृप्त रहते हैं। जो धर्म्मार्थ धन-संग्रह करने की चेष्टा करते हैं, वे भी भ्रान्त हैं। पङ्कलिप्त पदके प्रक्षालन करनेकी अपेक्षा पङ्क-स्पर्श न करना ही अच्छा है। धर्मराज! मनको प्रसन्न करो। प्रसन्न मनसे धर्म्म सुसम्पन्न होता है; उसके लिये अर्थकी आवश्यकता नहीं देखी जाती।"

राजा युधिष्ठिरने कहा,—"द्विजवर! मैं आत्म-सुखके लिये अर्थ की आकाङ्क्षा नहीं करता। केवल आश्रितों के पोषण

और यज्ञके अनुष्ठानके लिये उसको प्रयोजनीय समझता हूँ। मैंने अब तक गृहस्थाश्रम का परित्याग नहीं किया है। वनवासके बाद मैं फिर उसमें प्रविष्ट होने की आशा रखता हूँ। सब प्रकारके आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम प्रधान है। जिस प्रकार जननीके अवलम्ब पर सभी जन्तु जीवन धारण करते हैं; उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सभी आश्रम वाले जीविका निर्वाह करते हैं। देवलोक-पितृलोक भी गृहस्थोंके अवलम्ब पर रहते हैं। गृहस्थ याग और श्राद्ध-तर्पण द्वारा उनको तृप्त करते हैं और चिकित्सा-विधान तथा आतिथ्य-विधि द्वारा भिक्षुक, वानप्रस्थ और अभ्यागत की शुश्रूषा करते हैं। जाति-कुटुम्ब, पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव प्रभृति परिवारवर्ग बिना अर्थके सन्तुष्ट नहीं रहते। जब जिस आश्रम का अवलम्बन करना चाहिये, उस समय उस आश्रम-विहित क्रिया-कलाप का अनुष्ठान करना चाहिये। जो आश्रम-विहित क्रियाके अनुष्ठानसे पराङ्मुख होता है, वह आश्रम-भ्रष्ट कहा जाता है। मैं गृहस्थ होकर किस प्रकार गृहस्थो-चित क्रियाके करनेसे विरत हो, जीवनको व्यर्थ नष्ट करूँगा? इसीसे मैं अपने लिये अर्थ का प्रयोजन समझता हूँ।"

शौनकने कहा,—"महाराज! अरण्यमें रहकर गृहस्थाश्रम का कर्त्तव्य पालन करना दुष्कर है। यहाँ परिमित फल-मूल-अशन, वृक्षत्वग-वसन, पर्ण-शय्या, तृण-आसन और अञ्जलि पान-पात्र है। यहाँ तो अर्थागमका कोई भी उपाय नहीं दिखाई

देता। अर्थ-सुलभ द्रव्य भी दुर्लभ हैं; कृषिसाध्य शस्य भी दुष्प्राप्य हैं। ऐसे स्थान पर आपका कठिन परिश्रम पर्वत खोदकर चूहा निकालनेके समान अकिञ्चित्कर होगा। आपका परिवार बहुत बड़ा है। उसे केवल अन्न देकर भी आप तृप्त नहीं कर सकते। अतएव महाराज! आप यहाँ पर, किस प्रकार गार्हस्थ्य-धर्म्म अवलम्बन करके, उसका भली भाँति अनुष्ठान कर सकेंगे?"

राजा युधिष्ठिरने शौनक की बात सुनकर, पुरोहित धौम्य को बड़े आदरसे पुकार कर कहा,—"महाशय! जिससे मेरे गार्हस्थ्य-धर्म्मका अनुष्ठान हो, कोई ऐसा उपाय कीजिये। आप मुझे जैसा उपदेश दीजियेगा, मैं वैसाही करूँगा।" धौम्य ने थोड़ी देर सोचकर कहा,—"राजन्! आपको तपःसिद्धि करनी होगी। तप के प्रभाव से असाध्य भी सुसाध्य हो जाता है। बिना तपस्याके आपकी मनोकामना पूरी नहीं हो सकती। अतएव आपको सर्वभूत-प्रसविता सविता—सूर्य—की उपासना करनी होगी। वे जीवों कोअन्न देनेके कारण हैं। जिस समय उत्पन्न सभी जीव क्षुधासे क्लान्त हो जाते हैं, उस समय सहस्र-रश्मि अमृताख्य रश्मिद्वारा पृथ्वी का रस ग्रहण कर, उसे वृष्टि-रूपमें परिणत करते हैं। उसके द्वारा भूगर्भ-निहित सभी बीज अङ्कुरित हो जाते हैं। इसके बाद उपयुक्त तेज द्वारा परिवर्द्धित करके, उनके अभ्यन्तर प्राणधारणोपयोगी औषधि की सृष्टि करते हैं। वही औषधि प्राणियों का अन्न है। प्राणी सूर्य्यदत्त

अन्न खाकरही जीवन धारण और शारीरिक पुष्टि साधन करते हैं ; अतएव सूर्य प्राणियोंके अन्नदाता हैं । आप विधिके अनुसार उनकी आराधनामें यत्नवान होईये। दिवाकर—सूर्य—के प्रसन्न होनेपर आपको अन्न का अभाव नहीं रहेगा।"

इसके बाद राजा युधिष्ठिर, पुरोहित की आज्ञानुसार, यथाविधि सूर्य भगवान् की आराधना करने लगे, और आकण्ठ जलमग्न होकर एकाग्रचित्तसे उनका अनेक प्रकारसे स्तव करने लगे। भास्करने उनके स्तवसे सन्तुष्ट होकर कहा,—"वत्स ! मैं बारह वर्ष तक तुम्हें अन्न प्रदान करूँगा। तुम मेरी दी हुई इस ताम्बेकी थालीको द्रौपदीको दे देना। जबतक द्रौपदी भोजन नहीं करेगी, तब तक पाकशालामें चर्व्य, चूष्य, लेह्य, पेय चतुर्विध अन्न पर्य्याप्त रहेगा। द्रौपदीके भोजन कर लेने पर यह थाली खाली हो जायगी।" इस प्रकार वर प्रदानकर सहस्र-रश्मि—सूर्य भगवान्—अन्तर्हित होगये।

राजा युधिष्ठिर इस वरको पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। जल से निकल कर प्रसन्नताके साथ उन्होंने पुरोहितको प्रणाम और भाईयोंको आलिङ्गन कर, सूर्य की दी हुई थाली का नियम उन्हें बता, उसे द्रौपदी को दे दिया। द्रौपदी के पाक-क्रिया कर चुकने पर, परिमित अन्न, अल्प रहने पर भी, सूर्य नारायण के वर-प्रभाव से परोसनेके समय बढ़ जाता था। ब्राह्मण और अभ्यागत उसी अन्न द्वारा परितृप्त होते थे। दोपहर के समय मार्त्तण्ड ने प्रचण्ड प्रतापसे भूमण्डल

को आक्रमण किया। सभी जीव भय से अभिभूत हो गये। सभी का शोणित स्वेदरूपमें परिणत हो जल हो गया। कितने ही अकर्मण्य मनुष्यों ने निद्रा का आश्रय लिया। बाहर निकलने की किसी को हिम्मत न हुई। सभी छायादार स्थानोंमें रहना अधिक पसन्द करने लगे। जिन्हें प्यास अधिक लगती है, वही जल की खोजमें बाहर निकलते हैं। मृगकुल तृष्णाकुल हो जल के भ्रमसे मरीचिका की ओर दौड़े। वराहयूथ पल्वल-पङ्कमें दौड़कर घुस गये। माहिषदलने शस्य-कवल परित्यागकर जलाशयके जलमें प्रवेश किया। ग्राम्य-जन्तुओंने पेड़ोंकी छायामें, सुशीतल समीरणका सेवन करनेके लिये, आश्रय लिया। मातङ्गगण अवसन्न हो तालावके जलमें घुस गये। हिंस्रक निशाचर जन्तुओंने आतप-तापसे तापित हो, गुफाओंमें प्रवेश किया। बिलोंमें रहनेवाले जीवोंने उत्तप्त पर्वत-विवर त्याग कर, निर्झर-जलमें देह अर्पण किया। विहगकुल व्याकुल हो, आतपतप्त घोंसलेको छोड़कर, छायावाले वृक्षों के पत्रान्तरालमें विलीन हो गये। चातक-समूह "जल दे" "जल दे" कह कर जलद को पुकारने लगे। समीरणने सन्तप्त हो अपना अनल-सखा नाम सार्थक किया। सलिल शैत्य गुण परित्याग कर उष्ण हो गया। जलचर जीव निरुपाय हो पङ्कमें विलीन होगये। आपत-क्लान्त पथिक गृहस्थों के आश्रममें ठहर गये। राजा युधिष्ठिर इस समय तक अभ्यागतोंकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे। आजही नहीं, सदाही भाईयोंके भोजनान्तमें भुक्तशेष-बचे हुए

अन्न को आप खाया करते थे। सबके परितोष लाभ करने पर, पाञ्चाली भी भोजन करती थी। द्रौपदी के भोजन कर लेने पर सूर्य की दी हुई थाली का अन्न भी निःशेष हो जाता था। राजा युधिष्ठिर प्रतिदिन सूर्य की दी हुई थाली के प्रभावसे ब्राह्मणों और अतिथियोंको "द्वैतवन" में अन्न प्रदान कर, गृहस्थ-धर्म्म का पालन करने लगे। इस प्रकार कितने ही दिन व्यतीत होने पर, राजा युधिष्ठिरने परिजनवर्ग के साथ भागीरथी के किनारे-किनारे कुरुक्षेत्र के सभी तीर्थों का पर्यटन किया और दृशद्वती तथा यमुनामें स्नान कर, उन दोनों नदियोंके गैत्य-पावन-गुण सम्पन्न तट पर कुछ दिनों तक ठहरे रहे। अनन्तर सरस्वतीके उपकण्ठमें 'मरुस्थली' का पर्यटन कर, कमनीय काम्यक वनमें प्रवेश किया। वहां मनोरम पर्ण-कुटी बनाकर सुख से रहने लगे। वनकी स्वाभाविक रमणीयताके दर्शनसे थोड़े दिनोंके बाद उनके चित्त का खेद धीरे-धीरे दूर हो गया।
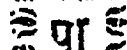
चौथा परिच्छेद।

काम्यकवन में कृष्ण का आगमन।

द्रौपदी और कृष्ण की बातचीत।

पाण्डव-पक्ष के राजा और यदुश्रेष्ठ कृष्ण—धर्मात्मा पाण्डवोंके वनवास का विवरण सुनकर—क्रोधित चित्तसे युधिष्ठिर से मिलने के लिये काम्यक वनमें पहुँचे। कृष्ण युधिष्ठिर के म्लानवदन और दीनभावको देख-कर, कोपकषायित लोचनोंसे कहने लगे,—"धर्मराज! यह पृथ्वी दुराचारी दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्णके रुधिरसे लाल हो जायगी! जो इन पापात्माओंकी सहायता करेगा, उसको भी रणमें पछाड़ूँगा! जो पापाचरण करता है, केवल वही वध के योग्य नहीं होता; जो पापात्माको सहायता करता है, वह भी वध के योग्य होता है।" यह बात कहते-कहते वासुदेवके शरीर से वाष्पायमान स्वेदविन्दु निर्गत होने लगे। दोनों आँखें लाल हो गयीं। सारा शरीर काँपने लगा। अर्जुनने हृषीकेश को क्रोधाविष्ट देख, अनेक प्रकारके स्तुति-वाक्योंसे प्रकृतिस्थ किया।

जिस प्रकार वर्षा के समय नदी सागर की ओर

दौड़ती है; उसी प्रकार शोक-व्याकुला पाञ्चालीने कृष्णके समीप आकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा,—"मधुसूदन! मैंने महाराज पाण्डु की पतोहू, महाबलशाली पाण्डवोंकी सहधर्मिणी, द्रुपद-राज की पुत्री और आपकी कृपा-पात्री होकर जैसा क्लेश पाया है; वैसा क्लेश एक साधारण मनुष्य की स्त्री भी नहीं पाती। मैं अपने स्वामियोंके समक्ष सभा में आनीता और 'दासी दासी' कहकर उपहासिता हुई हूँ। सभामें अपमान होनेसे मेरे सिवा कौन जीवद्भर्तृका स्त्री प्राणधारण कर सकती है? मेरे स्वामियोंके सिवा कौन पुरुष अपनी सह-धर्मिणीके वैसे अपमानमें उपेक्षा दिखा सकते हैं? जिस समय पाषण्डी गुरुजनोंके सामने मेरे परिधेय वस्त्र को खींचने लगा, उस समय मैं लज्जा और भय से मूर्च्छित होगयी। मूर्च्छा यदि मेरा परित्याग न करती, तो मेरा यह उपकार होता, कि मेरा यह अपमानित जीवन मुझे क्लेश न दे सकता। मैं भी अपने आत्मीयोंके सामने अपमानकी बात कहने और मुख दिखानेमें कुण्ठित न होती। निष्प्रतिक्रिय प्राण धारण करने की अपेक्षा, प्राण परित्याग करना ही अच्छा है। हाय! दग्ध जीवन निर्गत होकर भी, किस क्लेश-परम्परा को भोगने के लिये पुनरुज्जीवित हो गया? चैतन्यता प्राप्त होनेपर देखा, कि दुरात्मा ने उस समय तक भी मुझे नहीं छोड़ा है। उस विषम विपद्के समय "मधुसूदन मधुसूदन" कहकर मैं बहुत पुकारी और बहुत रोई चिल्लाई। अन्तःपुरमें क्रन्दन की प्रतिध्वनि

भी हुई; किन्तु इतने पर भी मेरे स्वामियोंने मेरा क्रन्दन नहीं सुना। क्या गुरुजन, क्या सभासद्‌गण किसीके मुख से कोई आश्वासन-वाक्य न निकला। उस समय मुझे मालूम हुआ, कि मेरे दुःखसे दुःखित होनेवाला इस संसारमें कोई नहीं है। पाण्डव शरणागत का परित्याग नहीं करते, यह बात व्यर्थ है। धर्म्मराजकी धर्म्मभीरुता धर्म्मपत्नी की रक्षा के लिये नहीं है। भीम का बाहुबल शत्रुघातक नहीं है। अर्जुनका गाण्डीव वीर-परिच्छद का चिह्न मात्र है। स्त्रियोंके स्वामी ही प्रधान अवलम्बन हैं, यह केवल बात ही भर है। दुर्बल पति भी पत्नी की रक्षा के लिये प्राणपण करता है, यह स्तुति-वाद है। भार्या अर्द्धाङ्ग-स्वरूपा है, यह अर्थवाद है। भार्या प्रिया है, यह जन-प्रवाद है। फलतः, पाण्डवोंका व्यवहार देखकर मुझे मालूम होता है, कि भार्य्या-रक्षण भर्त्ता का कर्त्तव्य-कर्म्म अथवा अवश्य पालनीय धर्म्म नहीं है और भार्य्या-परिग्रह भी पुत्र के लिये नहीं है। भार्य्याके रक्षित न होने से पुत्र रक्षित नहीं होता। पुत्रके रक्षित न होने से पिण्ड-विच्छेद और वंश का विलोप होता है; इस विचार से भी क्या मैं उस समय रक्षणीय नहीं थी? बन्ध्या स्त्री स्वामी के अनादर की पात्री होती है, किन्तु मैं बन्ध्या नहीं हूँ। पाँचों पाण्डवों के औरस और मेरे गर्भ से पाँच पुत्रों ने जन्मग्रहण किया है। हाय! वे सब बलिष्ठ और शस्त्र-विद्यामें गरिष्ठ हैं। इतने पर भी मैं रक्षा-योग्य न हुई!

भार्याके दूसरे कुलकी होनेके कारण, उसके क्लेशसे धर्म्मराज को क्लेश नहीं भी हो सकता है ; किन्तु उनके सहोदर भीम के साथ शत्रुओंने जो कठोर व्यवहार किया है, उसका स्मरण करके भी क्या उनके मनमें कष्ट नहीं होता ? अध्ययनके समय दुराचारी दुर्योधनने भीमसेनको विषान्न खिलाकर, हाथ-पाँव बाँध कर, जाह्नवी—गङ्गा—के जलमें डाल दिया था और दूसरे समय आशीविष—सर्प—द्वारा भीमका सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत किया था। अधिक परमायु होनेके कारण, भीम उस अवस्थामें जीवित रह गये। दुरात्मा और चार भाइयोंके प्रति भी वैराचरण करनेसे बाज़ नहीं आया। वारणावत नगरमें, लाक्षागृहमें आग लगा कर, माताके साथ पाण्डवों के जला डालनेकी पूरी चेष्टा की गई थी। ये उस समय महामति विदुरकी सहायता से, उस प्राण-सङ्कट कारी भयङ्कर विपद् से परित्राण पा, वन-वनमें घूम, बड़े कष्टसे प्राण धारण कर सके थे; तोभी धर्म्मराज को अरण्यवास से तृप्ति नहीं हुई! नहीं तो दारा तक को दाव पर रख, विषय दुरव-स्थापन्न हो, अन्तमें क्यों बारह वर्ष वनवास को शर्त लगा कर वनमें आते ?

द्रौपदी के अदृष्ट-लिखित कष्ट की सीमा नहीं थी; नहीं तो वीरवनिता और वीर माता होकर हीनवेश से क्यों वनवास में निर्वासित होती ? अदृष्ट-लिखित कष्ट का सम्पूर्ण भोग करने के लिये ही मैं इतने कष्ट और इतने अपमानसे अबतक जीवित हूँ; नहीं तो जिस समय सूत-कुलाधम कर्णने सभाके

थीं, मुझे भली-बुरी और जली-कटी सुनाई थीं; निर्लज्ज दुर्योधन ने भरी सभा में क्रीड़ा-व्यञ्जक अङ्गभङ्गी की थी, पाषण्डी दुःशासन ने केशाकर्षणसे मुझे भयानक यन्त्रणा दी थी, और वस्त्र खींच कर मुझे सख़्त तकलीफ़ दी थी; उसी समय मेरा जीवन बहिर्गत हो जाता। लज्जादायिका यातना की अपेक्षा मृत्यु-यन्त्रणा स्त्रियोंके लिये गुरुतर नहीं है। इस समय भी दुराचारियों का दुराचार मेरे हृदयमें निहित शल्यके समान मर्म्म-वेदना कर रहा है। मेरा हृदय-निहित शल्य हृदयमेंही गड़ा हुआ है, उससे मुझे कम दुःख नहीं होरहा है। प्रतिहिंसा द्वारा अन्यप्रकार का अपमान अपनीत हो जाता है; किन्तु वनितापमान कुल-कलङ्क-स्वरूप है; कुल-दूषक का शिरच्छेद किये बिना वह कलङ्क मार्जित होनेका नहीं। उज्ज्वल पाण्डव-कुल वनिताभिमर्ष से सदा के लिये दूषित हो गया। उसके दूर करने का कोई उपाय नहीं हुआ, इसी का मुझे बड़ा दुःख है।" यह कहकर द्रौपदी वाष्पगद्गद् कण्ठसे रोने लगी। अश्रुजल से उसकी छाती तर होगयी।

पाण्डवोंके सुहृद् कृष्णने द्रौपदीकी कातरोक्ति सुनकर खेद और क्रोध के साथ कहा,—"प्रिय सखि! तू अब मत रो, तेरे रोने से मुझे बड़ा कष्ट होरहा है। तेरा मुख अप्रफुल्ल देखकर मेरा अन्तःकरण व्याकुल होरहा है। दुरात्माने तुझे क्लेश देकर अपने विनाशकाही पथ परिष्कृत किया है। राजमहिषीका अनादर करके कोई कभी दीर्घकालतक जीवित नहीं रह सकता और

न सुख-स्वच्छन्दताका ही भोग कर सकता है। अपने से बड़े का अपमान दुष्टोंके आशु-विनाशका कारण होता है। तेरी मुख-श्री को मलीन देखकर, मेरा अन्तःकरण शोक से इस प्रकार अधीर होरहा है, कि अभी दुराचारियों को प्राणदण्ड करके अपना कोपानल शान्त करूँ। केवल धर्म्मराज का नियम-बन्धन मेरी इच्छा का अन्तराय होरहा है। नहीं तो तू इसी समय देखती, कि मेरा क्रोधाग्नि कहाँ तक दहन करनेमें समर्थ है। तू इस समय अश्रु-विमोचन करना छोड़। तेरह वर्ष व्यतीत होने पर, तेरी शत्रु-पत्नियाँ अपने-अपने स्वामियों को रुधिर लिप्त-कलेवर देखकर सदा अश्रुपात करें, वह काम मैं अवश्य करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा कभी व्यर्थ होनेवाली नहीं।" यह कहकर द्रौपदी को सान्त्वना दी।

अनन्तर वासुदेवने युधिष्ठिरसे कहा,—"धर्म्मराज! जिस जिस समय राजा धृतराष्ट्रने द्यूत की तय्यारी की थी, उस समय मैं द्वारका में उपस्थित नहीं था। अगर मैं मौजूद होता, तो कुरुराज के मुझे आमन्त्रण न करने पर भी, मैं स्वयं उपस्थित हो, द्यूत का अशेष दोष उल्लेख कर, उसका अनुष्ठान एक बार ही रहित कर देता। यदि अन्धराज स्वार्थपरता के वशीभूत हो, मेरा उपदेश-वाक्य न मानते, तो बलपूर्व्वक उनको निवारित करता। इसमें यदि कोई उनका मित्र विघ्न पहुँचाता, तो उसको भी मैं यमराजके घर भेज देता। क्या कहूँ, मैं उस समय दान-वोंके साथ युद्ध करनेमें फँसा हुआ था; इसीसे तुम लोगोंको

इतना कष्ट भोगना पड़ा। मेरे रहने पर शकुनिकी क्या सामर्थ्य थी, कि कपट-द्यूतमें तुम्हारी सम्पत्ति आत्मसात्‌करता ? इस समय अब उपाय ही क्या है ? सिद्ध कार्यको असिद्ध करना सर्वथा असम्भव है। सेतुभङ्ग होनेपर निःसृत जलको पुनः संग्रही करना साध्यायत्त नहीं है। भवितव्यता—होनहार—अन्यथा नहीं होती; इसीसे यह घटना घटी है। जो हो, लोक-मर्यादा रक्षाके लिये समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी। तेरह वर्षके बाद दुरात्मा दुर्योधन सहजमें राज्य वापस दे देगा, इस पर विश्वास नहीं होता। जो मनुष्य धर्म्म की बात बनाकर कार्य के समय अधर्म्म का आचरण करता है, उसको शठ कहते हैं। दुर्योधन कपट-क्रीड़ामें जय लाभकर, धर्म्म का नियम अवश्य पालनीय है, कहकर धर्म्मका गौरव करता है ; पर नियम-काल अतीत होने पर कहेगा, कि दुर्बोध राजनीति का प्रयोग करके राज्य ग्रहण किया है ; समस्त धर्म्म-नियम पालन करूँगा। शठ कार्य उद्धार कर, विरुद्ध वितर्क द्वारा आत्म-दोष क्षालन करने की चेष्टा करते हैं ; किन्तु वे धर्म्मके निकट अपराधी होते हैं, इस बातको वे कभी नहीं सोचते। वे अन्यायोपार्जित वित्त पर निरूढ़ स्वत्व समझते हैं और बिना प्राणान्त हुए उसकी ममता नहीं छोड़ते और सज्जन द्वारा तिरस्कृत होने पर छलग्राही होते हैं। धृतराष्ट्र जिस प्रकार जन्मान्ध हैं, उसी प्रकार दुर्यो-धन के दोष देखनेमें भी सहज अन्धे हैं। तुमने उस कपट-धर्म्म-वर्म्मधारी धृतराष्ट्र के वशीभूत हो कष्ट पाया है। अन्ध-

राज कार्य के समय कहेंगे, दुर्योधन मेरी बात नहीं मानता। उस समय तुम्हें मालूम होगा, कि धृतराष्ट्र तुम्हारे कैसे हितैषी हैं।

"दुर्योधन शठ, शठ-शिरोमणि शकुनि का भाञ्जा और निरतिशय विषयस्पृह है। विषय-भोगसे वितृष्णा न होनेसे उसमें आसक्ति ही बढ़ती है, इसको भोग-विलासी अनुभव नहीं कर सकते। हविर्भुज-वह्नि कभी हविर्योग से निर्वापित नहीं होता; बल्कि प्रज्वलित होकर बढ़ता ही है। यह दृष्टान्त उन लोगोंके हृद्गत नहीं होता। वे अपनी विषय-वासना तृप्त कर सकने से ही अपने तईं चरितार्थ समझते हैं, और उसमें धर्म्माधर्म्म नहीं समझते। दुर्योधन ने शठता से राज्य आत्मसात् कर लिया है और उसको चिरस्थायी करनेके लिये अनेक प्रकारके कपट-व्यवहार करेगा। शठ जाल बनाने को अधर्म्म नहीं समझते; बल्कि उसे श्रीवृद्धि का उपाय समझते हैं। विषय उनको प्राणापेक्षा प्रियतर होता है। विषयके लिये वे प्राण गँवाने को प्रस्तुत रहते हैं, किन्तु विषय-हानि करने में किसी प्रकार सहमत नहीं होते। अतएव जब तक दुर्योधन जानसे न मारा जायगा, तबतक राज्योद्धार नहीं होगा। अब तुम उसके साथ फिर किसी नियम में आबद्ध मत होना। अबसे तुम इस प्रकार सावधान रहना कि, जिसमें वह दुरात्मा फिर कोई छल न करने पावे। इसके बाद कृष्ण युधिष्ठिर द्वारा सत्कृत हो, सुभद्रा और अभिमन्यु को साथ लेकर द्वारका

को लौट गये। कृष्णके चले जाने पर धृष्टद्युम्न प्रभृति पाण्डव-पक्षवाले आत्मीयवर्ग युधिष्ठिर की अनुमति लेकर अपने-अपने घर चले गये। युधिष्ठिरने क्लेश सहनेके अयोग्य सुकुमार राजकुमारों को उन लोगों के साथ भेज दिया और आप काम्यकवन छोड़कर द्वैतवनमें चले गये और एक सुन्दर स्थान में पर्णशाला बना कर रहने लगे।

पाँचवाँ परिच्छेद।

धर्मराज और पाञ्चाली का कथोपकथन।

द्रुपदतनया का धर्मनन्दन को उत्तेजित करना।

एक दिन सन्ध्याके समय सबके एकत्र बैठनेपर, विदुषी पाण्डव-महिषीने असह्य अन्तस्ताप से कहा,—"पाण्डवश्रेष्ठ! यद्यपि आप जैसे दूरदर्शी लोगोंको मेरी जैसी मन्दमति अबला का उपदेश देना प्रगल्भता समझा जायगा; तथापि असह्य मनोव्यथा ने मुझे इतना अस्थिर कर दिया है, कि अब मैं किसी प्रकार बिना कहे नहीं रह सकती। अतएव आपको नारीजनसुलभ चपलताके लिये अपराध क्षमा करना होगा। महाराज! जो दुरात्मा होते हैं, वे दूसरेंका अपकार करनेमें कुछ भी कुण्ठित या दुःखित नहीं होते; बल्कि सुखी होते हैं। जब आप राजवेश परित्याग-पूर्व्वक, मृग-चर्म पहन कर, वनवास के लिये चले, उस समय नगर-वासियोंने अश्रुपूर्ण लोचनों से आपका मलिन-मुख देखकर महासन्ताप किया था; किन्तु उसी समय दुरात्मा दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण केवल इन्हीं चारोंने

पाण्डव-वनवास

धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर भाइयोंके साथ कुटिया में बैठे हैं। विदुषी पाण्डवमहिषी द्रुपदतनया महाराज की ग़लतियाँ दिखा-दिखा कर उन्हें उत्तेजित करना चाहती हैं। (पृ० १०२)

HARSINGH PRESS CALCUTTA.

आनन्द से हास्य किया था। आप दुर्योधन के अग्रज और धर्म्मपरायण हैं; तथापि आपको कड़ी बातें कहने में उन्हें लज्जा न आई। मृगेन्द्रगामी भीमसेन की चाल की नक़ल करके, उन्होंने अपने नीच स्वभाव का परिचय दिया। इस समय वह पापात्मा अपने तईं कृतार्थ समझकर, परम सुखके साथ समय बिता रहा है। आपकी वर्त्तमान अवस्था देखकर और पूर्वावस्थाका स्मरण करके, मेरा शोक समुद्र-उद्वेलित हो उठता है। कहाँ वह आपकी गुदगुदे गद्दों वाली दुग्ध-धवल कोमल शय्या और कहाँ यह कर्कश पक्वपर्णराशि-विकीर्ण वन्धुरभूमि? कहाँ वह मणि-माणिक्य-खचित सुन्दर शोभित सुवर्णमय सिंहासन और कहाँ यह तृण-कुशमण्डित कण्टकित धरासन? कहाँ वह हंस-लक्ष्यलांछित क्षौमवसन और कहाँ यह कठिन रुधिर-लिप्त मृगचर्म्म परिधान? कहाँ वह वैतालिक मङ्गल-मधुरगीत और कहाँ यह कठोर अशिव शिव गान? कहाँ वह चन्दन-चर्चित चारुकान्ति और कहाँ यह धूलधूसरित मलिन मूर्त्ति? महाराज! आपकी ऐसी पूर्वापर विरुद्ध अवस्था देखने से किस प्रकार मेरा वनवास-विकल चित्त स्थिर रह सकता है?

"आपके भ्राता चिरसुखी और चिर-विलासी हैं। उन लोगों का विषम वेश और विसदृश कार्य देखकर मेरा शोक-सागर उद्वेलित हो रहा है। जो भीमसेन सर्वदा अपूर्व्व परिच्छद परिधान कर, सेनापति के ऊपर अपना अधिकार दिखाते थे, सो

सौ दास जिनकी आज्ञा का पालन करने के लिये नियुक्त रहते थे, वही महात्मा आज वनचर-वेशमें दास का कार्य्य सम्पादन कर रहे हैं। जिस वीरने जगत्को जीतकर जिष्णुकी उपाधि पायी है, जो समरमें दुर्जय राजाओंको जीतकर धन-संग्रह पूर्वक धनञ्जय नामसे ख्यात हो चुके हैं, वे भी निर्धन व्याधा के समान मृगया द्वारा हम लोगों की उदर-पूर्ति कर रहे हैं। नकुल और सहदेव ये दोनों केवल मन्त्रणा-कार्य्य में ही लगे रहते थे, और किसी असमसाध्य कार्य्य में हाथ नहीं डालते थे, केवल सुख-विलास में अपना समय व्यतीत करते थे, वे इस समय भोग-सुखको तिलाञ्जलि दे कितना कष्ट भोग रहे हैं! ये इस समय हिंसक पशुओंके समान नखी और यवनोंके समान श्मश्रुधारी हो रहे हैं। हाय! मैं भी राजाधिराज पाण्डु की पतोहू, महाराज द्रुपद की दुहिता, महावीर धृष्टद्युम्न की बहन, और वीरश्रेष्ठ पाण्डवोंको सहधर्मिणी हो कर अपमानिता और वनवासिनी हुई!

"स्पष्ट बोध हो रहा है, कि आपकी अक्रोधिता ही हम लोगों के वर्त्तमान क्लेश का कारण है। आपके क्रोध प्रकाश करने से ही हम लोगोंके दुःख का अवसान हो जायगा। भीम-पराक्रम भीमसेन केवल अपनी गदाकी सहायता से अकेले ही कुरुकुल को निर्मूल कर सकते हैं। भुवन-विजयी धनञ्जय केवल गाण्डीव की सहायतासे अकेलेही सम्पूर्ण शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं। जब महाबल पराक्रान्त वशंवद सहोदरों

के रहते हुए भी आप शत्रुओं को प्रश्रय दे रहे हैं ; तब आपको अमर्ष-शून्य के सिवा और क्या कह सकती हूँ? क्षत्रिय जितक्रोध नहीं होते, मेरा यह विश्वास केशाम्बराकर्षणके समय से मुझे अलीक मालूम हो रहा है। यदि क्षमा को ही आपने शत्रु-दमन करनेका अच्छा उपाय समझ रक्खा है, तब ध्यान-धारणा द्वारा अन्तः शत्रु क्रोधादि को संयत कर, हुताशनमें आहुति प्रदान कीजिये; इस इतने बड़े परिवारको को छोड़कर तपस्या में मन लगाइये ; भाविनी राज्य-लालसा छोड़कर निष्काम सुलभ मुक्ति-लाभ के लिये प्रयास कीजिये। प्रतीकारमें असमर्थ, दुर्बल प्रकृतिके पुरुष ही पराभूत होकर, शान्तिपथका अवलम्बन करते हैं;किन्तु तेजस्वी क्षत्रिय अपने बाहुबलसे पराभव क्लेशको दूर करते हैं, और पराजित होनेपर पूर्वापेक्षा द्विगुणित पराक्रम-प्रकाश और प्रतिहिंसा द्वारा मनोव्यथा दूर करते हैं। आपने जिस वंशमें जन्म लिया है, और जिस उपायसे सार्वभौम उपाधि पायी है, इस समय तदनुरूप कार्य द्वारा वंश और नाम का गौरव रखिये।

"महाराज! क्षमा दिखाने से आपकी लघुता हो रही है। दूसरेके अपकार करने पर,क्षमता रहते हुए भी अपकारीका अपकार न करना ही वास्तविक क्षमाका लक्षण है। दुर्योधनने आपका अपकार किया है; आप उसका प्रत्यपकार नहीं करते, इसलिए आपको क्षमापरायण कहना चाहिये ; किन्तु क्षमापरता आपकी कार्य-साधिनी या लोकरञ्जनी नहीं हो सकती। क्षमा-

परायण और धार्म्मिक समझकर दुर्योधन आपका राज्य आपको वापिस नहीं कर सकता। इसीलिये सर्वसाधारणमें आपकी असमताही क्षमा कही जाकर उद्घोषित हो रहीहै। लोग यह नहीं समझते, कि आप क्षमता होते हुए भी शत्रुके प्रति क्षमा-प्रदर्शन कर रहे हैं। सभी यही समझते है, कि असमर्थ राजा अपमानित होकर वनमें चला जाता है। इसीलिये राजा युधिष्ठिर वनवास करते हैं। अच्छे क्षत्रिय सुयोग पाते ही सन्धि को तोड़कर अपना कार्य्य साधन करते हैं। कपट-मूलक द्यूत में पराजय होनेके नियम को तोड़ना तो कोई बात ही नहीं।

"क्षमामें भी पात्रापात्रका विचार है। पहले जिस व्यक्ति ने यथेष्ट उपकार किया हो, उसके किसी गुरुतर अपकार करने पर भी उसको क्षमा करनी चाहिये। उसके पूर्व्व उपकारका स्मरण करके, उसके प्रति क्षमा-प्रदर्शन कृतज्ञताका चिह्न है। समीचीन बुद्धि सबमें नहीं होती; इसलिये भूल बहुतों से हो सकती है। यदि कोई व्यक्ति बुद्धि-विपर्य्यय-वश या अज्ञानतासे प्रयुक्त हो अपकार करे, तो वह भी क्षमाके योग्य पात्र है। सामान्यतः प्रथम अपराधी क्षमा किया जा सकता है। जो जान-बूझकर अपराध करता है और पीछे उसको झुठाना चाहता है, ऐसा कुटिलमति प्रथम अपराधी होने पर भी क्षमाके योग्य नहीं है। भर्त्सना करके द्वितीय अपराधीका अपराध कथञ्चित मार्जन किया जा सकता है। दुरात्मा दुर्य्योधन प्रथम

अपराधी नहीं है, कि वह क्षमाके योग्य हो। द्वितीय अपराधी भी नहीं है, कि वह खाली डाँट-डपटके योग्य हो। उसने पद-पदपर अपराध किये हैं, इसलिये वह बड़े भारी दण्डके योग्य है। जिस-जिस काम के करने से शास्त्रकार लोगोंको आततायी समझते हैं, उस दुराचारीके द्वारा अग्नि-संयोग, विष-प्रयोग, दाराभिमर्षण प्रभृति सभी काम अनुष्ठित हुए हैं। वह केवल हाथ में तलवार लेकर सामने मारनेके लिये उद्यत नहीं होता है, किन्तु भीतर-ही-भीतर वह इस प्रकार खड्ग-प्रयोग कर रहा है कि, जिससे अब तुम लोगोंके परित्राणका दूसरा उपाय नहीं है। जो एक बार भी कुछ अपकार करता है, उस अपकारका नाम सुनते ही क्रोध हो आता है। तत्कृत कार्य का स्मरण होनेपर भी क्रोधानल प्रज्वलित हो जाता है। आप इस समय उसके किये हुए कर्मका फल भोग रहे हैं। बारम्बार उसके किये हुए सभी निष्ठुर कार्योंको मैं स्मरण करा रही हूँ; तथापि उसपर आपको क्रोध नहीं होता।" यह कहते-कहते मुक्ताफलके समान स्थूल अश्रुजल द्रौपदीके विशाल लोचनों से निर्गत होने लगा।

युधिष्ठिरने बड़े आदरके साथ कहा,—"प्रिये! शुभ और अशुभका होना क्रोध हीके ऊपर निर्भर रहता है। जो क्रोध को जीत सकता है, उसीका मङ्गल होता है; और क्रोध जिसको जीत लेता है, उसीका अमङ्गल होता है। क्रोधके राज-शरीरमें राजत्व करने पर प्रजा निर्मूल हो जाती है। कोप परवश-होने

पर,कार्याकार्यका विचार नहीं रहता । क्रोधान्ध मनुष्य गुरुजन का प्राणनाश या कड़ी-कड़ी बातोंसे उनका अपमान कर सकता है । कोई कोई मनुष्य क्रोधके परवश हो, आपही अपने विनाश का कारण हो जाते हैं । वे आत्महत्याको महापाप नहीं समझते और आत्म-हत्या करनेसे पराङ्मुख भी नहीं होते । ये सारे अमङ्गल क्रोध ही से होते हैं ; इसीसे मैंने लोकनाशन क्रोध-हुताशन को निर्वापित कर दिया है । दुर्ज्जय दूरस्थ शत्रु को जीतने से कोई शूर नहीं होता ; अन्तःशत्रु क्रोधादि को जय कर सकने से रिपुञ्जय नामधारी यथार्थ शूर शब्द से अभिहित किया जा सकता है । जो क्रुद्धके ऊपर क्रोध नहीं करता, वह अपने तईं और दूसरेके तईं भी बड़ी भारी विपद से परित्राण कर सकता है । बुद्धिमान मनुष्य, बुद्धिबल से क्रोध के जीतने में ही अपनी तेजस्विता समझते हैं । मूढ़ मनुष्य पर-पीड़ाकर कोप दिखानेमें ही अपनी तेजस्विता समझते हैं । क्रोध के परित्याग करनेमें जो तेजस्विता प्रकट होती है, उसको मूर्ख नहीं समझ सकते । उस तरह के प्रशान्त चित्तके सुखका आस्वादन अशान्त लोग नहीं कर सकते और रोषाविष्ट व्यक्ति पटुता, क्षिप्रकारिता और क्षमार्ज्जव प्रभृति सद्गुणों से लाभान्वित नहीं हो सकते और किसी कार्यको सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते । यदि सभी मनुष्य क्रोधी स्वभावके हो जायँ, तो निरन्तर युद्ध से मनुष्य नष्टप्राय हो जायँ । क्षमाशीलोंका कार्य्य

जो सन्धि है, उसका फिर उत्थापन हो न हो। विधाताने मानव-संहार के लिये रजोगुण-स्वरूप मनुष्यके मनमें जिस क्रोध की सृष्टि की है, केवल उसी के द्वारा जीवों का संहार होता है। यदि हिंसा करने से प्रतिहिंसा करनी पड़े, दुःखित होने पर दुःख दिया जाय, आहत होने पर आघात किया जाय, तो इस प्रणाली से प्रतिहिंसा की अनुहिंसामें ही समस्त जगत् नष्ट हो जाय। क्षमा के द्वारा पृथ्वी का जो अभ्युदय हुआ है, वह तब नयनगोचर नहीं होगा। यदि क्षमागुण न होता, तो भूतधात्री धरित्री की भूतसृष्टि विलोप हो जाती। क्षमासे ही धर्म्म की प्रवृत्ति होती है; क्षमा से ही धर्म्म की शान्ति होती है। क्षमा-विहीन मनुष्य अपने दोनों लोक नष्ट कर देता है। क्षमाशील मनुष्य इहलोक और परकाल की रक्षा करता है। अतएव साधुशीले! यदि स्वधर्म्म परित्याग करना पड़े, तोभी क्षमाको परित्याग करके क्रोधका आश्रय नहीं लूँगा। तुम महोपकारिणी क्षमा का आश्रय लो, क्रोध का आवेग परित्याग कर, सन्तोष अवलम्बन करो। पितामह भीष्म और महात्मा वासुदेवने भी क्षमामूलक शान्ति को कर्त्तव्य ठहराया है।

"और यह भी असम्भव नहीं है कि विदुर, सञ्जय, द्रोणाचार्य्य प्रभृति महोदयोंके द्वारा राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन शान्ति-विषयमें प्रवर्त्तित हो, हमलोगों का राज्य हमें लौटा देंगे। यदि लोभवश वे राज्य न लौटायेंगे, तो अवश्य ही

उनका विनाश होगा। भरत-वंश का विनाश होना है, इसीसे यह घटना घटी है। दुर्य्योधन अभिमानी, लोभी और अक्षमी है। वह किसी प्रकार सन्धि करनेके लिये प्रस्तुत नहीं होगा; तथापि उसको कुछ दिनोंके लिये क्षमा करना होगा। स्त्री-बालक और वृद्ध जिस प्रकार क्षमा के योग्य पात्र हैं, उसी प्रकार जिसके साथ किसी समय के नियम से आबद्ध होना होता है, वह भी तबतक क्षमा के योग्य है। नियमित काल व्यतीत होनेपर भी युद्ध के सिवा राज्य पानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है; तथापि इस समय सदाचार और लोकाचारकी रक्षा के लिये क्षमा का आश्रय लेना होगा; नहीं तो लोक और धर्म्म के विरुद्ध कार्य्य करना पड़ेगा। इस पथ का अवलम्बन करने से, मैं तेरह वर्ष बाद लोक-समाजमें निन्दास्पद और धर्म्म के निकट अपराधी नहीं होऊँगा। शारीरिक कष्ट के लिये धर्म्मपथ से परिभ्रष्ट नहीं हो सकता। सभी अवस्थाओंमें धर्म्म रक्षणीय है और वह रक्षणीय धर्म्म ही हमलोगों की रक्षा करेगा और वही अमंगल दूर करेगा। धर्म्मपथ पर चलनेसे कष्ट भी हो, तो वह अच्छा है; पर अधर्म्माचरण द्वारा सुख-लाभ भी श्रेय नहीं है। अधर्म्म का सुख क्षणस्थायी, अन्तमें परितापी और चित्त को अस्वास्थ्यकर होता है। धर्म्म-सुख नित्य, अन्तमें सुखप्रद, और चित्त की सजीवता सम्पादक होता है। प्रियतमे! मैं धर्म्मपथसे इस समय विचलित नहीं सकता। तुम सहिष्णुता अवलम्बन कर कालक्षेप करो। धर्म्ममें तुम्हारी जैसी बुद्धि है,

उसमें कुछ कमी न होने पावे। यह तुम भली भाँति जान लो, कि धार्म्मिक मनुष्य परिणाममें अवश्य ही उन्नत होते हैं।"

द्रौपदीने कहा,—"महाराज! चात्रधर्म्मानुमोदित तेज दिखाकर राज्योद्धार अवश्य करना चाहिये ; इस विषयमें मैं आपकी बुद्धिमें कुछ विपर्यय देख रही हूँ। चमावलम्बन कर निश्चेष्ट रहियेगा और धर्म्म के ऊपर रहकर कर्त्तव्य-कर्म्म से विरत हो जाइयेगा, इससे आपका अभीष्ट साधन होगा, यह ठीक नहीं मालूम होता। केवल दया, धर्म्म, चमा प्रभृति महद्गुणोंकी सेवा करके आप वनवास का कष्ट भोग रहे हैं, यही इसका यथेष्ट प्रमाण है। आपलोग सभी समय धर्म्म को सार पदार्थ समझते हैं ; धर्म्म के लिये प्राण देनेको प्रस्तुत रहते हैं। आप लोगों का राज्य और जीवन धर्म्म के लिये ही नष्ट हो गया। आप लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि विषम समय में सौभ्रात्रगुण-सम्पन्न भाई भी एक दूसरे का परित्याग कर सकते हैं ; किन्तु धर्म्म अकृत्रिम सुहृद् के समान मरने पर भी अनुगमन करता है। इसलिये जितने प्रकारके धर्म्मानुयायी याग-यज्ञ हैं, आप-लोगोंने प्रायः उन सबका अनुष्ठान किया है। अरण्यवास के समय भी मैं उस धर्म्मकी अङ्गहानि नहीं देख रही हूँ। मुझे ऐसा विश्वास है, कि जो धर्म्मके नियम की रचा करता है, धर्म्म भी उसका रचा-विधान और कष्ट निवारण करता है ; किन्तु मैं कार्य द्वारा इसके विपरीत देख रही हूँ। आपके शत्रुओंने अधर्म्म पथ पर चलकर राज्य लाभ किया है ; आप धर्म्मपरायण

होकर निर्वासित हुए हैं। धर्म्म का मर्म्म धर्म्म ही जाने. हम-लोग ऐसे धर्म्म-सेवन का तात्पर्य नहीं समझ सकते। द्यूतमें पराजय होनेसे आपकी बुद्धि मारी गयी है, इसीसे आप हिताहित नहीं समझ सकते। मैंने निश्चय समझा है, कि बिना तेज दिखाये, आपकी यह शोचनीय दशा दूर नहीं होगी।

"क्षत्रिय तेज दिखाकर लक्ष्मी लाभ करते हैं, इससे उन्हें अधर्म्म नहीं होता; बल्कि यही उनका धर्म्म है। जिस प्रकार ब्राह्मणों का प्रतिग्रह-लब्ध धन अच्छा है; और वैश्यों का कृषि-वाणिज्य द्वारा संग्रहीत वित्त विशुद्ध है; उसी प्रकार क्षत्रियों का विजित अर्थ प्रशंसनीय है। इस प्रकारके न्यायोपार्जित धन, जातियोंके लिये, निन्दनीय वृत्ति द्वारा लब्ध नहीं कहे जा सकते; यह मनुस्मृति की बात है और धर्म्मानुगत है। ब्राह्मण जिस प्रकार दुर्बल और ऋजु-स्वभाव होते हैं, उनकी वृत्ति भी वैसी ही सामान्य प्रतिग्रह है, और यह दूसरे के अनुग्रह पर निर्भर है। क्षत्रिय स्वभावतः तेजस्वी और उग्र होते हैं, उनकी वृत्ति भी वैसी ही तेजस्विनी और स्वतन्त्र है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, वह उसीके अनुरूप कार्य करने से प्रशंसा का पात्र और उसके विरुद्ध कार्य करनेसे उपहासास्पद होता है; और प्रकृति-कार्य भी उसके द्वारा भली भाँति सम्पन्न नहीं होता; अतएव प्रकृति के अनुसार कार्य करना ही विधेय है।

"शास्त्रमें भिन्न भिन्न वर्ण और जाति की जीविकाके लिये

विशेष-विशेष निर्दिष्ट वृत्ति नियमित हुई हैं। सभी मनुष्य उसीके अनुसार जीविका निर्वाह करते हैं। क्षत्रिय तेज द्वारा अथवा प्रजापालन द्वारा धन प्राप्त करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं; वैश्य कृषि-वाणिज्य द्वारा जीवन यापन करते हैं; अन्यान्य वर्ण वाले अपनी-अपनी वृत्ति और अपनी-अपनी जातिके निर्दिष्ट व्यवसाय द्वारा अपनी-अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। एक वर्ण की वृत्ति दूसरे वर्ण के अवलम्बन करने से शास्त्र का नियम उल्लङ्घन होता है। जिस व्यवसाय से एक जाति का सुख-पूर्वक निर्वाह हो सकता है, उसके दूसरी के ग्रहण कर लेने से दोनों को कष्ट होता है और अभ्यास न रहने के कारण, वह कार्य सुचारुरूपसे सम्पन्न भी नहीं होता। ब्राह्मणोंके प्रजापालनके लिये तैयार होनेपर अक्षमताके कारण उनसे सुशासन नहीं होता। उनका ज्ञान, धर्म्मोपदेश और शास्त्रानुशीलन क्रमशः कम हो जाता है। क्षत्रियोंके क्षमार्जव प्रभृत्ति मुनि-वृत्ति का आश्रय लेनेसे दण्डयोग्य दुष्ट मनुष्य दण्डित नहीं होते; इससे राज्यतन्त्र विपर्यस्त हो जाता है। अतएव शास्त्र-निर्दिष्ट नियम का पालन और तद्विहित कर्म्म करना ही विधेय है। आप इस चिराचरित शास्त्रीय नियमका उल्लङ्घन कर, जातिगत कर्म्म परित्याग-पूर्व्वक, केवल धर्म्म के ऊपर निर्भर रहियेगा, यह युक्ति-संगत नहीं मालूम होता है।"

युधिष्ठिरने कहा,—"प्रिये! एक असाध्य व्याधि है, जो दूर

नहीं की जा सकती। जब मनुष्यों को बीमारी हो जाती है, तब उनकी विषय-तृष्णा की शान्ति नहीं होती; कोपदाह की निवृत्ति नहीं होती: मानसिक वेग बढ़ जाता है; पद-पद पर मोह होता है; उनकी बुद्धि इस प्रकार विमोहित हो जाती है, कि रोग के समय भोग कुपथ्य है, इस बात को भी वे नहीं समझ सकते। ऐसे समय यदि उनकी मीमांसा-बुद्धि उद्दीप्त न हो, तो उन्हें अवश्य कुपथ पर पदार्पण करना पड़े। जो उत्तर और वर्त्तमान काल का भली भांति विचार करके चल सकते हैं, वे ही यथार्थ तत्त्वदर्शी हैं। आपत्काल उपस्थित होने पर, दुरावस्था में पड़ने पर या भोगेच्छा बलवती हो जाने पर, अनेकोंकी मीमांसा-बुद्धि जड़ीभूत हो जाती है। तुम्हारी बुद्धिकी गति अन्यायकी भी ओर बढ़ रही है। मुझे धर्म्मकी अत्यन्त सूक्ष्म गति अवगत है। आपत्काल में भी मेरी धर्म्म-बुद्धि कलुषित नहीं होती। मैं यह सब जान-सुनकर भी धर्म्म-विरुद्ध कर्म्ममें कैसे प्रवृत्त हो सकता हूँ?

"आपत्कालमें शिष्टाचारका अवलम्बन करके चलना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह और कपट प्रभृति दुष्ट भाव परित्याग करके, साधु पुरुष जो व्यवहार करते हैं, उसीका नाम शिष्टाचार है। गुरु-सुश्रूषा, सत्य-कथन, धर्म्म-निष्ठा, अहिंसा, सम्मान-रक्षा, अङ्गीकार-पालन इत्यादि कितने ही सद्व्यवहार शिष्टाचारके अङ्ग हैं। सब जीवोंपर दया, सब अवस्थामें सन्तोष,

सबका प्रिय आचरण प्रभृति अशेष उपकार करनेवाला सदाचार—साधुशील महात्माओंका कार्य्य है। शिष्टाचार करने वाले महानुभाव, बिना कहे ही परोपकारमें प्रवृत्त होते हैं। वे राग-द्वेषके वशीभूत हो, कर्त्तव्य-कर्म्मके करनेसे विरत नहीं होते और आलस्य से या लोभसे प्रेरित होकर धर्म्मानुष्ठानसे विमुख नहीं होते। इष्टापात होनेसे अत्यन्त सन्तुष्ट नहीं होते; अनिष्टापात होनेसे भी नितान्त म्रियमाण नहीं होते और अङ्गीकृत कार्य्यका सम्पादन करनेमें प्राणपणसे चेष्टा करते हैं। अतएव शिष्टाचारका अवलम्बन करके चलनेपर अङ्गीकारका पालन करना ही पड़ता है। द्यूत-सभामें मैंने जो अङ्गीकार किया है, उसका पालन न करनेसे सत्यव्रतका भंग होगा। सत्य-व्रतके भंग होनेसे विश्वास-विहीन और धर्म्म-हीन होना पड़ता है; असमय क्षत्रिय-वृत्तिका आश्रय लेनेसे ये सभी अपकर्म्म होते हैं, इसीलिये पापजनक भयङ्कर क्षात्र-धर्म्मका अवलम्बन मैं नहीं कर सकता। मनुष्यके सुखकी अवस्था और दुःखकी अवस्था चिरस्थायी नहीं हैं। राजसूय यज्ञ तक सुखके दिन थे, अब दुःखके दिन आये हैं। फिर दुःखके बाद सुखके दिन अवश्य आवेंगे। सुख-दुःख देनेमें दैव ही प्रधान है। बिना दैवकी प्रसन्नताके मनुष्य सुखका भागी नहीं हो सकता। शुभ और अशुभ ये सभी आप-से-आप होते हैं। जब अदृष्ट शुभ होगा, तब अवश्य ही शुभ फल मिलेगा। अतएव देवि! दैवावलम्बन और अदृष्टके ऊपर निर्भर रहकर

धर्म्मका अनुष्ठान करो। "यतो धर्म्मस्ततो जयः" यह वाक्य कभी मिथ्या नहीं होगा।"

द्रौपदीने कहा,—"धर्म्मराज! हठ, दैव, स्वभाव और पौरुष ये चारो अर्थ-सिद्धिके प्रसिद्ध कारण हैं। कोई कोई हठादि को, पूर्वजन्म के कर्म-फलका बीज कहकर मीमांसा करते हैं। अयत्न-सम्भूत अकस्मात् प्राप्त धनको लोग हठलब्ध धन कहते हैं। भाग्यसे जो धन मिल जाता है, उसको दैवलब्ध कहते हैं। अनिश्चित कारणसे जो धन मिल जाता है, उसको स्वभाव-लब्ध अर्थ कहते हैं और श्रम द्वारा जो अर्थ प्राप्त होता है, वह पौरुष-लब्ध धन कहा जाता है। हठी मनुष्य कर्म्म करनेकी सामर्थ्य रहते, आलस्य-परवशके समान, कर्म्म परित्याग करके बड़े दुःखसे जीवन नष्ट करते हैं। हठी मनुष्य अयाचित व्रतजीवीके समान कदाचित् प्राप्तव्य अर्थ से लुब्ध और प्रतारित होकर बड़े कष्टसे प्राणधारण करते हैं। यदि इनकी मनुष्योंमें गणना हो, तो अङ्गागत भक्ष्य-भोजी अजगरको सरीसृप कहना व्यर्थ है। जो क्षमता रहते, दैवके ऊपर निर्भर हो, अभाव दूर करनेमें निश्चेष्ट रहते हैं, उन्हें कापुरुष कहते हैं। कापुरुष कभी अपनी अवस्थाकी उन्नति नहीं कर सकते। कर्म्मवीर मनुष्यको कृतकार्य्य देखकर, अपने भाग्य की निन्दा करके मनस्तापको निवारण करते हैं, और उनको कार्य्य-दक्ष तथा सौभाग्यशाली समझकर अपने प्राक्तन कर्म्मोंका दुःखमय फल अवश्य भोग करना होगा; यह स्थिर करके दुःखसे

किसी प्रकार कालक्षेप करते हैं। यदृच्छा-लब्ध फल द्वारा फला-हारी वनचारी मनुष्य जिस प्रकार सहिष्णुता-शक्तिसे जठरानलको बुझाते हैं, उसी प्रकार स्वभावज अर्थ पर भरोसा करनेवाले मनुष्य अगत्या सन्तोषसे अभाव-दाहज्वरको शान्त करते हैं। यही तीन कारण अर्थ-प्राप्तिके लिये निश्चित नहीं हैं। अनि-श्चयत्वके ऊपर निर्भर रहना और प्रतारककी बातपर विश्वास करना, दोनों एक समान हैं। यदि यही तीनों कारण अर्थागम के हेतु समझे जायँ, तो सबको बराबर अर्थ प्राप्ति होनी चाहिये और एक दूसरे की अवस्थामें कुछ भी कमी-वेशी न होनी चाहिए। फलतः, फलसिद्धिके अनिर्दिष्ट कारणोंमें ये तीन कारण निर्दिष्ट किये गये हैं। जो कार्य्य करनेमें असक्त है, वह कोई काम करके सुन्दर फलका भागी नहीं होता; सुतरां वह केवल दैवपर दोषारोपण करके अपने तई प्रबोध करता है। यदि आत्म-प्रबोधका उपाय न हो, तो जीवनमें केवल दुःख-ही-दुःख रहे; हताशासे मनुष्यका अन्तःकरण सदा व्याकुल रहे। इस प्रकारके मानसिक कष्टको दूर करनेकी औषधि-स्वरूप दैवादि माने गये हैं। दैवादि कल्पित हों या न हों, पुरुषकारके बिना कोई कार्य नहीं होता। यदि कोई दैव-बलसे सामने धनका निधि देख ले या हठबल से किसीके सम्मुख द्रव्य उपस्थित हो जाय, और स्वभाव-बलसे वृक्षके नीचे सुस्वादु रसाल फल गिरा हो, तो बिना पुरुषके उद्योगके वे सब कभी संग्रहीत नहीं हो सकते। दैवादि धन-प्रभृति पदार्थोंको हाथमें उठाकर दे

नहीं सकती ; पुरुषकार इन सभी कार्य्यों को सुसम्पन्न करता है। इसी लिये पुरुषकार अर्थसिद्धिका प्रधान कारण होता है। अतएव सारे कार्य्य पौरुषसाध्य हैं. कर्म न करके केवल दैव के ऊपर निर्भर रहना, किसी प्रकार युक्ति-संगत नहीं।

"मनुष्य कर्म्म करके अपनी-अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, और बीजकी अंकुरोत्पादिका शक्ति तथा पृथ्वीका उर्वरता-गुण देखकर खेत में बीज वपन-पूर्वक जीविकाका प्रबन्ध कर लेते हैं और अपनी बुद्धिके प्रभावसे द्रव्यगुण और कार्य्य-कारण सम्बन्धका विचार करके अपना कार्य्य कर लेते हैं। जो मनुष्य इसमें अभिज्ञ होता है, उसका कार्य्य सम्पूर्ण और पूर्ण फल-प्रद होता है और काम करनेवालेके अनभिज्ञ होनेसे कार्य्य में सफलता नहीं होती। यदि किसी को अनभिज्ञतासे किसी कार्य्य में उसे सफलता न हो. तो इसके लिए कार्य्यको कोई दोष नहीं दे सकता और काम करने पर भी यदि सफलता न हो तो इसके लिये कार्य्यकी ओर से उदासीन रहना भी उचित नहीं है। फल-सिद्धिके अनेक कारण हैं। उनमेंसे किसी एक कारणमें भी त्रुटि रह जानेसे फल-प्राप्तिमें रुकावट पड़ जाती है। एक बार कृषक अनावृष्टि या अतिवृष्टिके कारण सफल-मनोरथ न होनेसे अपना उद्योग नहीं छोड़ता है। वह पुनर्व्वार दृढ़तर अध्यवसायके साथ कृषि-कर्म्म आरम्भकर, उसमें सफलता प्राप्त करके ही तो दम लेता है। जो कर्म्मवीर पुरुष हैं, वे कर्म करके सुखी होते हैं और

जो अकर्मण्य और आलस्य-परायण होते हैं, उन्हें अवश्य दुःख भोगना पड़ता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

"संशय ही अनेक अनर्थों का मूल है। कार्यमें संशय उत्पन्न होनेपर सुचारुरूपसे वह कार्य सम्पादित नहीं होता। उस कार्य्य से जिस फलकी आशा होती है, वह फल भी नहीं मिलता। जो मनुष्य संशय-रहित होकर कार्य्य करता है, वह अर्थ-सिद्धि लाभ कर सकता है। उसके कार्य्य में सफलता न होनेपर भी, वह समझता है, कि मेरे किये हुए कार्य्यमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गयी है; इसीसे अभिलषित फल नहीं मिला। वह पुनः अपनी त्रुटिका संशोधन करके, उस कार्य्यके द्वारा अपना अभीष्ट सिद्ध करने की चेष्टा करता है। जो संशयापन्न होकर कार्य्य करता है, वह एक बार भी फल न मिलने पर, फिर उस कार्य्यमें नहीं लगता और "वृथा परिश्रम करना है" यह समझकर उस कामसे मन हटा लेता है। ऐसे मनुष्य कभी सफलता और सुख नहीं पा सकते।

"महाराज! हम लोगोंको जो विषम कष्ट हो रहा है, आपका उद्योग अवलम्बन न करना ही उसका एक मात्र कारण है। यदि आप पौरुष के अनुरूप कार्य्य करें, तो अवश्य हम लोगों की यह दुर्दशा दूर हो सकती है; नहीं तो यह क्लेश कभी शेष न होगा। कार्य्यमें सफलता नहीं होगी, यह सोचकर यदि कार्यक्षम पाँचों भाई चुपचाप बैठे रहेंगे, तो राज्यकी लालसा भी छोड़नीही पड़ेगी। जब औरों

को उनके कार्य्यमें सफलता हो रही है, तो हम लोगोंके कार्य्य कैसे सफल नहीं होंगे ? जिस कारणसे औरोंका कार्य्य फल-प्रद हो रहा है, उसी कारणसे हम लोगोंका भी कार्य्य सफल होगा; इसमें क्या सन्देह है ? हम लोग कर्म्म करनेपर फलभागी नहीं होंगे, यह बात सोचकर अपने कर्त्तव्यसे उदासीन रहना उचित नहीं है। उद्योग और अनुदासीनता,—यही दोनों फल-सिद्धि के प्रधान कारण हैं। जबतक कार्य्यमें सफलता नहीं होती, तब तक दोनों का बराबर रहना आवश्यक है। बिना कार्य्य का आरम्भ किये फल-लाभ होगा या नहीं, यह नहीं समझमें आता और आत्मक्षमता का भी परिचय नहीं मिलता। अतएव आप लोग कार्य्यमें प्रवृत्त हो, कार्य्यके फला-फल का निरूपण कीजिये और आपकी क्षमता और शौर्य्यादि गुण कहाँ तक कार्य्य-साधक हैं, इसको भी एक बार परीक्षा करके देख लीजिये। आप लोगोंका कार्य्य कभी निष्फल नहीं होगा। असाधारण क्षमता और अलोक-सामान्य शौर्य्यादि गुण अवश्य कार्यकारी होंगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।"

युधिष्ठिरने कहा,—चारुशीले ! तुम्हारी बातें हृदयहारिणी होने पर भी, धर्म्म-विरुद्ध और नास्तिक-मतानुगत होनेके कारण ग्रहणयोग्य नहीं हैं। मैं कर्म्मका निरादर नहीं करता और उसके अनुष्ठानसे भी विरत नहीं हूँ ; किन्तु फलाकाङ्क्षी होकर मैं कर्म्म नहीं करता, केवल अपना कर्त्तव्य समझकर उसका अनुष्ठान करता हूँ। धर्म्म अवश्य कर्त्तव्य है, इसीसे

यथाशक्ति उसका अनुष्ठान करता हूँ। धर्म्म या कर्म्मके किसी फलकी आकाङ्क्षा नहीं करता। गार्हस्थ्य आश्रममें जिन सब कामोंके करनेकी विधि है, उन्हें करनेके लिए यथासाध्य प्रयत्न करता हूँ। उनका फल मिलता है या नहीं, यह मेरे लिये अन्वेषणीय नहीं है। गुरु-परम्पराचरित महाजनानुमोदित शास्त्र-निर्दिष्ट धर्म्मका अनुष्ठान करता हूँ। इसके फलकी आकाङ्क्षा करके, जो स्वर्गादिकी कामनासे धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं, वे धर्म्म-विक्रेता वणिक हैं। जो फलकी अभिलाषा से दान करते हैं, वे धर्म्मका वास्तविक फल नहीं पा सकते। और जो मनुष्य सन्दिग्ध चित्तसे या लोक-विद्वेषके भयसे धर्म्म का अनुष्ठान करता है, वह भी धर्म्म-जनित विशुद्ध फल भोगका अधिकारी नहीं होता। धर्म्म के व्यवहारमें किसी प्रकारका कपट-व्यवहार नहीं करना चाहिए। कपट-व्यवहारसे कपटी-धार्मिक होना पड़ता है। जिस प्रकार निर्मल आकाशमें किसी प्रकारका मैल नहीं रह सकता; उसी प्रकार विशुद्ध धर्म्ममें किसी प्रकारका कलङ्क नहीं लग सकता। धर्म्मके ऊपर दृढ़ता और प्रगाढ़ श्रद्धा रखना आवश्यक है। निर्मल मनीषा-शोधित स्थिर सिद्धान्त को धर्म्मतत्व-प्रतिकूल तर्क द्वारा भ्रमात्मक समझना उचित नहीं है। जिस प्रकार भले-बुरेका विचार किये बिना ही लोग राजाज्ञाके अनुगामी हो जाते हैं, उसी प्रकार धर्म्मका आदेश सिर पर रखकर तदनुसार चलना पड़ता है।

"पक्षपातरहित होकर विचार-पूर्वक देखनेसे मालूम होता है, कि क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर कार्य्य करनेका समय अभी उपस्थित नहीं हुआ है। प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रिय-धर्मका प्रधान अङ्ग है। त्रयोदश वर्ष व्रत-नियम पालन करनेकी जो प्रतिज्ञा की है, उसकी पूर्त्ति किये बिनाही, असमय युद्ध-पक्ष अवलम्बन करने से, लोगोंकी दृष्टिमें छली और प्रतिज्ञा भङ्ग करनेके कारण धर्मके निकट अपराधी होना होगा और न्यायपथ पर चलनेवाले व्यक्ति को स्वतः प्रवृत्त जो सहाय-बल मिल जाता है, उससे भी वञ्चित होना पड़ेगा। लोग कपटी राजाओंका उदाहरण देते समय मेरा नाम लेंगे। इससे बढ़कर दुर्नामकी बात और क्या होगी? अतएव प्रिय-तमे! अब विरोधि-तर्क द्वारा मेरी धर्मबुद्धिको कलुषित मत करो और मेरे प्रसन्न मनको अप्रसन्न मत करो।"

छठा परिच्छेद।

भीमसेन की उत्तेजनापूर्ण बातें।

धर्मनन्दन का धर्ममार्ग से विचलित न होना।

भीमसेनने कहा,—"धर्म्मराज! क्षात्रधर्म्मके अनुसार राज्य-लाभ करनाही चाहिए। इसमें तर्क-वितर्क और मन्त्रणाकी क्या आवश्यकता है? कौरवोंके प्रति दया-प्रदर्शन और धर्म-प्रतीक्षा करना कभी उचित नहीं। शठके साथ शठता करना कभी निन्दनीय और दूषणीय नहीं है। चाहे जिस उपाय से हो, शत्रुका दमन करना ही विधेय है। देखिये, हम लोग धर्म्मपथ पर चलकर धर्मार्थ-काम-सम्भूत सुख से वञ्चित और अरण्यमें निर्वासित हुए हैं। दुरात्मा दुर्योधन पापाचरण करके राज्यसुख के सम्भोग का अधिकारी और नीति-निपुण कहाकर यशस्वी होरहा है; दुरात्माने धर्मके प्रभाव और प्रताप द्वारा राज्य ग्रहण किया है। उसने कपट व्यवहार द्वारा राज्य-सुखसे हमलोगोंको वञ्चित किया है। जिस प्रकार शृगाल सिंह की भोग्यवस्तुको कौशल से भक्षण करता है, अनवधानता रूप सुअवसर को पाकर कुत्ता

जिस प्रकार राज भोग को उच्छिष्ट कर देता है, उसी प्रकार हमलोगों की असनोयोगिता के दोषसे ही दुराचारीने राज्य अपने अधिकार में कर लिया है। हमलोग शौर्य्य प्रकाश करके राज्य-शासन करते, तो किसी को ऐसी क्षमता नहीं थी, कि हमलोगोंके हाथ से उसे ले लेता।

"धर्म्मराज! अर्थ धर्म्मोत्पत्ति का कारण है। धर्मके उद्देश्य से जितना अर्थ व्यय किया जाता है, उतनाही धर्म्म सञ्चित होता है। राज्यरूप विपुल वित्त द्वारा महान् धर्म्म संगृहीत हो सकता है। अतएव द्यूत-सत्य-पालन-सम्भूत अल्प परिमित धर्म्म के लिये, बहुधर्म्मास्पद राज्य को सम्पद परित्याग करने से आपकी मूर्खता ही प्रकट हो रही है। आप धर्म्मप्रिय हैं, धर्म्मवृद्धिके लिये धर्म्मपथ पर चलनेके लिये अनुरोध करते हैं। धर्म्म का फल सुख है। लोग सुखके लिये धर्म्म का अनुष्ठान करते हैं। आप धर्म्म के फल की आकांक्षा नहीं रखते; केवल धर्म्मके निमित्त ही धर्म्म का उपार्ज्जन करते हैं; इस प्रकार धर्मोपार्ज्जन का कोई प्रयोजन नहीं दीखता। जो उपार्ज्जित धर्म्म सुख-रूप फलका कारण नहीं होता, उसके उपार्ज्जन करनेके लिये लोगों की प्रवृत्ति होती है, यह समझ में नहीं आता। बिना प्रयोजनके कर्म्म में किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह स्वतःसिद्ध बात है। जो धर्म्म सुख का कारण नहीं है, बल्कि बन्धुओं को क्लेश देने वाला है; वह धर्म्म व्यसन है। इस प्रकार के कुत्सित धर्म्मके उपार्ज्जन करनेमें कोई क्लेश क्यों

स्वीकार करेगा, इसका भी मर्म मेरी समझमें नहीं आता। केवल बड़े भाई की आज्ञा अविचारणीय है, यही सोचकर हमलोग इस कष्टके भोगनेके लिये वनमें आये हैं और आग्नेय-गिरिके समान अपने-अपने उग्र तेजको अन्तर्लीन करके, भीतरही भीतर दग्ध होरहे हैं—पापियोंके अनुष्ठित मर्म्मान्तक सभी कार्यों का स्मरण कर सतत सन्तप्त होरहे हैं। आप अभी बहुत दिनों तक मुनिप्रिय शान्ति-पथ पर पर्यटन करेंगे, इसको मैं या अर्जुन अथवा हमलोगोंके बन्धुवर्गमेंसे कोई भी अनुमोदन नहीं करेगा।

"धर्म्म और अर्थ आपस में एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। अर्थ-द्वारा धर्म्म अर्जित होता है। अर्ज्जित धर्म्म भी अर्थागमका द्योतक होता है। जिस प्रकार मेघ सागरोत्पन्न वाष्पद्वारा परिपुष्ट होकर, वारिवर्षण द्वारा समुद्र-प्रवाह को परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार अर्थ धर्म्म की वृद्धि करता है और धर्म्म भी अर्थसिद्धिमें अनुकूलता दिखाता है। आप धर्म्म-साधन अर्थ को छोड़कर किस उपाय से धर्म्म की वृद्धि कीजियेगा, यह मैं नहीं समझ सकता। अर्थ प्राप्त होने पर या इन्द्रियोंके तृप्त होने पर जो सुख मिलता है, उसका नाम काम है; काम अत्यन्त सुखसेव्य पदार्थ है। उसका आकार नहीं है। वह केवल चित्तमात्रका आश्रय कर चित्त का सन्तोष-साधन आनन्द प्रदान करता है। मनुष्य सुख-सेव्य द्रव्यके भोगसे जिस प्रसन्नताको प्राप्त करते हैं, वही काम का फल है। उसके

उपभोगसे वञ्चित होने पर मानव-जन्म निष्फल हो जाता है। विशेषतः, अर्थ और कामके त्रिवर्ग में परिगणित होनेसे धर्मार्थ काम, इन त्रिवर्गके प्रति समान यत्न करना पड़ता है। शास्त्रमें इनके लिये पृथक्-पृथक् समय भी निरूपित हैं। दिनके प्रथम भागमें धर्माचरण, द्वितीय भागमें अर्थसञ्चय और तृतीय भागमें कामानुशीलन करना पड़ता है। इस प्रकार समय निरूपित होनेसे से कोई किसी का अन्तराय नहीं होता; बल्कि एक दूसरे की सहायता करते हैं। जो यथासमय त्रिवर्ग-साधन कर सकते हैं, वेही धर्मतत्त्वज्ञ पण्डित हैं। आप धर्मतत्त्वज्ञ होकर, अकारण अर्थ और कामको परित्याग कर रहे हैं। आपके इस परित्याग का क्या भाव है, उसे मैं समझनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ।

"पहलेही कहा जा चुका है,कि अर्थविहीन मनुष्य धर्मका अनुष्ठान करनेमें भली भाँति समर्थ नहीं होता। विपुल वित्त होनेसे धर्म का भली भाँति अनुष्ठान हो सकता है। अर्थ क्षत्रियों के पराक्रम-साध्य है। क्षत्रियों का पराक्रम ही उनका धर्म है। अतएव आप अपने धर्म के अनुसार तेज दिखाकर, अर्थागम का उपाय देखिये। आप राजा और सबके स्वामी हैं। बिना धन के राजाके प्रभुत्व की रक्षा नहीं होती। तेज दिखाये बिना धन रक्षित नहीं होता। तेज दिखाने से हिंसा होती है, यह कहकर आप डरिये मत। जब हिंसा-प्रधान क्षत्रिय-कुलमें आपने जन्म लिया है, तब स्वधर्म पालन

करनेके लिये, आनुषङ्गिक हिंसा अवलम्बन करना किसी प्रकार अवैध नहीं है। प्रजा का पालन करना क्षत्रिय का प्रधान धर्म है;किन्तु अर्थ ग्रहण न करनेसे वह धर्म भी सुचारुरूपसे प्रतिपालित नहीं होता। जब क्षत्रियमात्र स्वार्थपर हैं; तब निश्चय जानियेगा, कि बिना कुटिल भावका अवलम्बन किये स्वकार्य्य सिद्ध नहीं होगा। यदि सभी आपके समान धर्मपरायण होते; तो आपका यह धर्म्मावलम्बन असङ्गत न होता; किन्तु क्षत्रिय समाज स्वेच्छाचारी और स्वैरविहारी है। वह मुखसे तो धर्म्म की बात कहता है, पर भीतर-ही-भीतर अधर्म्माचरण-द्वारा अपना कार्य्य सिद्ध करता है। क्षत्रियों की गति-प्रवृत्ति का समझना सहज काम नहीं है। धार्म्मिक लोग दुरूह क्षत्रियाचार समझनेके लिये तत्पर नहीं होते। धार्म्मिक व्यक्ति दूसरोंके व्यवहार को बुरा नहीं समझते, इससे वे सब को धार्म्मिक ही समझते हैं। दूसरोंके द्वारा वास्तविक कुकार्य्य होनेपर भी विश्वास नहीं करते और उनसे बुरा काम भूल से हो गया है, यह समझकर उन्हें क्षमा कर देते हैं। भ्रम-प्रमाद सबसे होता रहता है, यह सोचकर वे किसीको निरादर की दृष्टि से नहीं देखते और जिसकी बुद्धि जिस कार्य्यमें नियोजित रहती है, वही उस कामका दोषादोष भली भाँति जान सकता है। आप की बुद्धि की गति केवल धर्म्मका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश देखनेमें तत्पर है, इसलिये कुटिलमति दुर्योधनकी गतिको प्रवृत्ति तथा कुटिलभाव आपके बुद्धिगम्य नहीं हो सकता।

"नीतिशास्त्र का विलोड़न करके देखनेसे मालूम होता है, कि राजनीति राजा की इच्छानुसारिणी है । न्यायान्याय सभी मार्ग उसमें विशुद्ध और धर्म-साधक कहे गये हैं । अन्यायपथ पर चलकर कृतकार्य्य होनेसे, भली भाँति नीति-प्रयोग किया गया है, कहकर राजा प्रशंसाका भाजन होता है ; और न्याय-पथ पर चलकर कृतार्थता लाभ करनेसे, मनुष्य प्राणि-संहारक महावीर प्रभृति उपाधियोंसे विभूषित होकर यशस्वी होता है। पराक्रम-प्रधान हिंसाप्राय युद्ध न्यायपथ है और विषप्रयोग, सुहृद्भेद प्रभृति अन्यायाचार अन्याय-पथ है। ये दोनों मार्ग ही चरम पापमें संलग्न हुए हैं, तथापि वे दूषणीय कह कर त्याज्य नहीं हैं; बल्कि चात्रधर्म्म होनेके कारण क्षत्रिय-समाजमें आदरणीय होगये हैं । बलवान बाहुबलसे सम्मुख-संग्राममें शत्रु को जीत कर कृतार्थ होते हैं और दुर्बल कार्य्यार्थी पुरुष, अपने बुद्धिबल या चतुराईसे उत्कोच प्रदान द्वारा या सुहृद्भेद किंवा गुप्त-भावसे विष-प्रयोग द्वारा प्राण संहार करके, शत्रु का राज्य अपने अधिकारमें कर लेता है । प्रथमोक्त तेजस्वी मनुष्य यशस्वी होकर समाज में कीर्त्तित होता है ; और द्वितीय यथावलम्बी मनुष्य यद्यपि प्रथमोक्त मनुष्यके समान कीर्त्ति लाभ नहीं कर सकता है ; तथापि अधार्म्मिक नहीं समझा जाता और धर्म्मासन पर आसीन होकर राजत्व करता है । देखिये, असुर बड़े और देवता छोटे हैं। बड़े होनेके कारण असुर स्वर्गीय राज्यके वास्तविक अधिकारी थे ; किन्तु देवताओंने किसी समय छल-द्वारा

या कौशल से दानवों को पराभूत कर, स्वर्गीय राज्य ले लिया और इसलिये सब के पूज्य होगये। स्वर्गीय राज्य असुरोंके अधिकारमें रहता, तो देवता यज्ञ के भागका भोग न पा सकते और लोक-समाजमें पूजनीय न हो सकते। केवल स्वर्गीय राज्य उनके हस्तगत है, इसीसे उनका ऐसा असीम सम्मान है। आप पहले बड़े होनेके कारण राजा हुए थे, और राज्यकार्य भी भली भाँति चला रहे थे; इसलिये प्रजा आपको प्रजारञ्जन कहकर आप की बड़ी प्रशंसा करती थी ; इसी कारण आपका राजपद इतना रूढ़-मूल हो गया था, कि वह कभी उखड़नेवाला नहीं था ; तथापि राज्य-लुब्ध सुयोधनने, लाक्षा-गृह-दाह प्रभृति निदारुण व्यापार द्वारा,हमलोगोंको राज्यसे वञ्चितकर, सम्पूर्ण राज्य अपने हाथमें ले लिया था। पीछे धृतराष्ट्रने, लोक-निन्दाके भयसे, आपको आधा राज्य देकर, परस्पर सन्धि-बन्धन द्वारा सुयोधनके सम्मानकी रक्षा की। अब सुयोधन द्यूत-क्रीड़ाका सुअवसर पाकर राज्य का अद्वितीय अधीश्वर हो गया है। उसका कार्य देखने से मालूम होता है, कि उसने दुर्नीत देवताओंके दृष्टान्तानुसार बड़े का राज्य अपने अधिकारमें कर लिया है। वह इस समय धृतराष्ट्रके कहनेमें नहीं है। देवताओंकी रीतिसे उसने राज्य ले लिया है, इसीसे वह जनापवाद का भी भय नहीं करता। अब वह हमलोगोंको फिर राज्य दे देगा, इसकी आशा न कीजिये। यदि उसकी राज्य देने की इच्छा होती, तो वह एक वर्षके अज्ञातवास की शर्त्त न रखता और अज्ञातवास के

समय भरत के गुप्तचरोंके अगोचर रहना होगा और यदि भरत के गुप्तचर देख लेंगे, तो फिर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा, इस बात का उल्लेख न करता। आप दुरात्मा की दुरभिसन्धि को समझ कर या तो कौशल से राज्योद्धार की चेष्टा कीजिये या पराक्रम दिखाकर उसका उद्धार कीजिये। कौशल की अपेक्षा पराक्रम आपको विशेष फलदायक होगा। अर्जुन के समान धनुर्द्धर दूसरा नहीं है। गदायुद्ध-विशारद मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है और पुरुषोत्तम वासुदेवके समान सहायक भी दूसरा कोई नहीं है। आपके पास इतने विजय-साधन-बल विद्यमान हैं। आप यदि चाहें, तो अखण्ड-भूमण्डलके अधीश्वर हो सकते हैं।

"जहाँ अल्प धन प्रयोग करनेसे समधिक लाभकी सम्भावना हो, वहाँ दान-प्रयोग करना मन्त्रणा-सिद्ध है। किन्तु जब सुयोधन हमलोगोंका पूर्व्व-सञ्चित अपरिमित धन लेकर धनवान होगया है, तब हमारा दान-प्रयोग निष्फल है। अतएव आपको सर्वतोभावसे बल-प्रयोग करना चाहिये, इससे आपकी कीर्त्ति और शक्ति दोनों प्रतिष्ठित होंगी। आप अधर्म्म का भय क्यों करते हैं? यद्यपि राज्यका लाभ और पालन करनेके लिये राजा को दुरदृष्ट-भागी होना पड़ता है, किन्तु राजा शास्त्र-विधानानुसार भूरिदक्षिणक यज्ञ विशेषका अनुष्ठान करके, कृत-प्रायश्चित्त ब्राह्मणके समान, परिधि-निर्म्मुक्त दिवाकरके समान, अथवा मेघनिःसृत पूर्णचन्द्रके समान अधिकतर तेजस्वी हो उठते

हैं। यदि आप इस साधीयसी क्षत्रियवृत्तिका परित्याग कर, ब्राह्मण-सुलभ कातरवृत्तिको अवलम्बन करेंगे, तो मैं निश्चय समझूँगा, कि खरांशु शीतांशु हो गये; शोभाकर शशधर की शोभा अपनीत हो गयी और हमलोग आपके कर्म्म-दोषसे इस समय जितना क्लेश पारहे हैं, आगे इससे भी अधिक क्लेश पावेंगे। अब हमलोगोंके क्लेश का अवसान नहीं होगा।"

राजा युधिष्ठिरने भीमकी बात सुनकर अमर्षभावसे कहा, "भाई! तुम वाक्य-द्वारा मेरा सन्ताप वर्द्धित कर रहे हो; तथापि मैं तुम्हारी बातमें कोई दोषारोपण नहीं कर सकता हूँ। यह सत्य है, कि तुमलोग मेरे कर्त्तव्य-दोषसे दुःख पारहे हो; किन्तु जिस समय मैं द्यूत-क्रीड़ामें प्रवृत्त हुआ था, उस समय मैंने मन-ही-मन सोचा था, कि द्यूत-द्वारा मैं दुर्योधनकी सब सम्पत्तिको जीत लूँगा। दुर्योधनकी भलाई करनेवाले शकुनिने मेरा मतलब समझकर कपट-क्रीड़ा आरम्भ की। मैं उसकी शठताको उस समय न समझ सका, सुतरां पराजित हो गया। पुनर्व्वार जब देखा, कि उसकी अयुगसारिका युगवद्ध होने लगी, तब उसके द्वारा उसकी कूट-क्रीड़ा को स्पष्ट ही समझ गया, किन्तु उसे पकड़ नहीं सका। उस समय अल्प क्षति सहकर क्रीड़ासे निवृत्त होना ही अच्छा है, यही सोचा था। बारम्बार पराजय होनेसे कोपदहनने प्रदीप्त होकर, मुझे दग्ध और अधीर कर दिया। कुपित होनेपर कर्त्तव्य-कर्म्ममें बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, यह जान कर भी शकुनि के वाक्य-शल्यसे एकान्त व्यथित

हो गया। कहनेमें हर्ज क्या है? उस समय मैं क्रोधसे इतना अभिभूत होगया था, कि मुझे कुछ भी धैर्य्य नहीं था। विवेक-शक्ति अन्तर्लीन होगई थी, इसलिये मैं उन्मत्त के समान होकर, दाव बढ़ा-बढ़ाकर पराजित होने लगा और जिस वस्तुको दाव पर न रखना चाहिये, उसको भी दाव पर रखने लगा। जब मैं दासत्व-बन्धनमें आवद्ध होगया, उस समय भी मुझे चैतन्योदय नहीं हुआ। अन्तमें जिस समय द्रौपदीको दाव पर रखकर हार गया, उस समय क्षणिक् प्रबोध होनेसे, अन्तर्दाहसे दग्ध और इतिकर्त्तव्यता-विमूढ़ हो जड़प्राय होगया। उस समय द्रौपदीने हम-लोगोंको छुड़ाया। इन्हीं सब बातों का विचार करनेसे मैं तुम्हारे कहने को अनुचित नहीं बता सकता। किन्तु भवितव्यता अवश्यम्भाविनी और हमलोगों को ऐसी क्लेशदायिनी होगी, इसीसे पुनर्व्वार द्यूतमें प्रवृत्त हुआ। कुकर्म्म के विरस फल का आस्वादन अभी भूलने भी न पाया था, कि फिर उसमें प्रवृत्त होगया। तब इस प्रकारके क्लेश परम्परा के भोग को विधि-लिपिके सिवा और क्या कह सकता हूँ? दुर्योधनने जब सभामण्डपमें सबके सामने द्वादश वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवासकी बात कहकर कहा, कि यदि पराजित व्यक्ति अज्ञातवासके समय भरतचरके ज्ञानगोचर होंगे, तो उन्हें फिर द्वादश वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना होगा। इस शर्त्त पर तुम या अर्जुन किसीने भी असम्मति नहीं प्रकट की। मैं भी इस शर्त्त से तुमलोगों को भी सहमत

समझकर खेलने लग गया। भले आदमियोंके सामने प्रतिज्ञा-बद्ध होकर, इस समय क्या कहकर नियम उल्लङ्घन करूँ? तुमने भी सभामें बैठे हुए लोगोंके सामने जो प्रतिज्ञा की है, उसको पूरी करनेके लिये असमय में कैसे प्रवृत्त होगे? और द्यूत-सभामें जिस समय मेरे ऊपर कुपित हो, तुमने वीरत्व दिखाने-का उद्यम किया था; उस समय धर्म्मके नियमका उल्लङ्घन समझ कर ही तुम शान्त होगये थे; केवल अर्जुनके अनुरोधसे निवृत्त नहीं हुए थे। किन्तु वही तुम्हारे वीरत्व दिखानेका उत्तम अवसर था। उस समय वैर-साधनमें प्रवृत्त होनेपर, अधिकांश लोग यही समझते, कि मर्म्म-पीड़ाकर क्लेशदायक कष्ट सह्य न कर सकने से वैर निर्यातन में प्रवृत्त हुए हैं और जो मनुष्य प्रतारित होकर दलबद्ध बल-सम्पन्न प्रतारक शत्रु का शिरच्छेदन कर सकता है, उसका वीरत्व पौरुष-गुण से भूषित हो जाता है और वही वीरशाली पुरुष राजलक्ष्मी का प्रियपात्र और वीरगणनामें अग्रगण्य होता है और शत्रुगण उसके पदानत होजाते हैं। तुम उस पराक्रम दिखानेके उपयुक्त समयको हाथसे गँवाकर, इस समय वनवासका क्लेश सह्य न कर सकनेके कारण, ऐसा कह रहे हो; पर अब यह व्यर्थ है। इससे मुझे केवल वाक्य-यन्त्रणा होरही है। जो हो; तुम निश्चय जानो, कि मैं धर्म्मपथसे किसी प्रकार स्खलित नहीं होऊँगा। मुझे दृढ़ ज्ञान है, कि जीवनकी अपेक्षा धर्म्म-प्रियतर है। धर्म्मके निकट राज्य-धन अत्यन्त तुच्छ वस्तु है। सत्य के सौवें हिस्से के मूल्य के बराबर भी इनका मूल्य नहीं

है। अतएव भीम शान्त हो, और समय को प्रतीक्षाके लिये सहिष्णुता-शक्तिको दृढ़ीभूत करो। जिस प्रकार कृषक वसन्तमें वीज वपन करके हेमन्तमें प्रचुर फल लाभ करते हैं; उसी प्रकार तुम भी इस समय धर्म्म-वीज रोपकर, उपयुक्त समय पर अवश्य सुन्दर फल भोगोगे।"

भीमने कहा,—"महाराज! काल अनन्त और अप्रमेय है, सर्वत्र शीघ्रगामी वायुके समान उसकी सदा गति है, और जल-प्रवाहके समान वह उन्नत-प्रवाही है। ऐसे अस्थिर-स्वभाव कालके ऊपर किसी नियम को निवद्ध करना सहज काम नहीं है। मनुष्यका जीवितकाल निर्णय होनेका नहीं; सुतरां जीवित मनुष्य का काल के ऊपर सन्धि-बन्धन करना सङ्गत नहीं हो सकता। त्रयोदश वर्ष जीवित रहकर, द्यूत-पण प्रतिपालन होगा, इसी का क्या निश्चय है? हो सकता है, कि इतने ही समय के भीतर हमलोगों को मानव-लीला संवरण करनी पड़े। जल-विम्ववत् क्षण-विनश्वर जीवन धारण कर, असीम-काल की प्रतीक्षा करते रहना युक्ति-युक्त नहीं। जिसकी परमायु असंख्य या जीवितकाल स्थिर हो, वही मनुष्य कालके ऊपर कथञ्चित नियम बन्धन करके चल सकता है। आपको जब अपना आयुष्काल ही विदित नहीं, और हमलोग भी कबतक जीवित रहेंगे, यह भी आप स्थिर नहीं कर सकते, तब किस प्रकार कालके ऊपर नियम-बन्धन कर, आप समय की प्रतीक्षा करना चाहते हैं? मृदु-प्रकृति

प्रकृति पतिके समान उग्र-धर्म्मा और क्रूरकर्म्मा क्षत्रिय अनुमोदन नहीं कर सकते। जो शौर्यादि गुण-विशिष्ट होने पर भी, लोगोंके निकट अविदित रहता है, जो वैर-निर्यातनमें समर्थ होने पर भी पिञ्जरबद्ध शार्दूल के समान शत्रु के निकट अवरुद्ध रहता है, वह केवल नासाविद्ध बलीवर्द्द के समान हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ देह धारण कर, दूरका भार वहन करते-करते दुर्बल हो जाता है। ऐसे मनुष्यका क्षत्रिय-कुलमें जन्म न होना ही अच्छा है।

"आप अज्ञातवासके समय किस प्रकार अपने तईं छिपाकर रखियेगा। परिचय पूछने पर, सत्यव्रतकी रक्षा के लिए, अपने तईं आप कभी नहीं छिपा सकियेगा। ऐसा कोई आदमी नहीं, जो आपका नाम न जानता हो या आपका नाम सुन कर वह आपको न पहचान सकता हो। यद्यपि आपने छत्र चामरादि राजचिह्न परित्याग कर दिये हैं; तथापि राजश्री ने आपके मुखमण्डलकी शोभा इस समय भी बढ़ा रक्खी है। प्रशस्त ललाटमें चक्रवर्त्ती लांछन उर्द्धदण्ड दण्डधर दण्डवत शोभा पा रहा है। उर्द्धरेखा समस्त पदतल की सेवा कर रही है। ध्वजचक्र प्रभृति राज-लक्षण और कर-कमलमें कोकनद भ्रान्ति उत्पन्न कर रहा है। वीर कलेवरमें मूर्त्तिमान क्षात्र-धर्म्म विराज रहा है। दया-दाक्षिण्यादि सभी महनीय भाव उत्तमाङ्गोंकी उत्तम शोभा सम्पादन कर रहे हैं। असामान्य लावण्य, असाधारण तेज, ये सभी लोक-ललामभूत पार्थिव

दुर्लभ शरीर-सौष्ठव, किसीके न कहने पर भी, आपको ससागरा पृथ्वीका अधीश्वर कह देंगे। विशाल वक्ष, शालभुज, वृषस्कन्ध, कम्बुग्रीवा प्रभृति सहित प्रशस्त शरीर कभी भाग्यहीन मनुष्यका परिचायक नहीं है। अग्नि कभी तृण द्वारा आच्छादित नहीं होती। सूर्य्य कभी बहुत देर तक गगन-मण्डलमें आवृत नहीं रह सकते और हम लोगोंको ही आप किस उपायसे छिपा कर रखियेगा? हिमाचल जिस प्रकार लता-द्वारा आच्छन्न नहीं रह सकता; उसी प्रकार भीम भी लोक-समाजमें अप्रकाशित नहीं रहेगा। जिसने मुझे कभी नहीं देखा है, वह भी मेरा आकार-प्रकार देखकर समझ जायगा, कि यही भीम है। यदि ऐरावत किसी उपायसे खर्वाकार हो सके, तो मेरा भी आत्मगोपन सम्भव है। राजसूय यज्ञमें कितनेही राजाओं ने मेरे भयसे कर प्रदान किया था। एक वर्ष तक किसी शहर में रहकर उन लोगोंके निकट अविदित रहूँगा, इस पर मुझे विश्वास नहीं होता। गाण्डीव-धन्वा अर्जुन ही जन-समाजमें किस प्रकार अपरिचित रहेगा? उसकी आजानुलम्बित मौर्विकिण लांछित विशाल भुजा किस प्रकार सङ्कुचित होगी? उसकी तेजस्विता किस प्रकार अन्तर्हित होगी? जिस प्रकार वह्नि भस्माच्छादित होकर कुछ देर तक अप्रकाशित रहती है; किन्तु वायुके प्रवाहित होते ही वह फिर प्रज्वलित हो जाती है; उसी प्रकार धनञ्जय प्रशान्त-भाव से रह सकता है सही, किन्तु बुरा काम देखतेही वह तत्क्षण ओजगुण धारण करेगा।

उस समय उसका उग्रभाव देखकर कौन नहीं पहचान लेगा, कि यही अर्जुन है ? वीर-कर्म्म देखते ही वीरका शरीर स्वतः ही स्फीत हो जाता है, इससे क्षत्रियकुलमें अर्जुन अपरिचित रहेगा, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। यह स्वयम्बर-वधू सम्मोहन-रूपधारिणी द्रौपदी किस प्रकार भोग-सुख-परायण मनुष्योंके बीचमें रहकर निर्विघ्न दिन बितावेगी, यह मेरी समझमें नहीं आता। यह हम लोगोंके साथमें रहे बिना एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकती, और हम लोगही किस साहस से एकाकिनी असहाया पाञ्चालनन्दिनीका दूसरेके गृहमें रहना अनुमोदन करेंगे ? अपने साथ भी इसको कैसे रख सकेंगे ? एक कामिनीको पाँच मनुष्योंकी सहचारिणी देखकर अभिज्ञानवशतः लोक अनायासही पहचान लेंगे, कि यही निर्वासित पाण्डव हैं। अब कोई इसका अपमान करेगा, तो यह जीवन धारण नहीं कर सकेगी, और अब मुझसे भी सह्य नहीं हो सकता। इन्हीं सब कारणोंसे आपका अज्ञातवास पूरा नहीं हो सकेगा। कर्म्मदोषसे फिर दुष्कर्मों का दुःखमय फल भोग करनेके लिए, पुनर्व्वार वनमें आना होगा, और इसी प्रकार अपना जीवन बिताना पड़ेगा; नहीं तो नियम भङ्ग करके, युद्धानल प्रज्वालन-पूर्व्वक राज्यकी लालसा पूर्ण करनी होगी। जो काम आप करना चाहते हैं, वही मैं भी करना चाहता हूँ। पर अन्तर यही है, कि आप उस कामको ज़रा विलम्बसे करना चाहते हैं, और मैं अभी करना चाहता हूँ। मधुके न

होनेपर गुड़से काम चलाया जा सकता है। तेरह वर्ष के बदलेमें हम लोग तेरह मास भी उस नियम का पालन करें, तो बहुत है। अब तेरह मास अतीत हो गये हैं। मेरी और अर्जुन की सहायतासे शत्रुहृत राज्य के प्रत्युद्धारकी चेष्टा कीजिए।" राजा युधिष्ठिर भीमकी बातें सुनकर असन्तुष्ट हो, मनही मन सोचने लगे, कि क्रुद्ध और बलवान मनुष्यको पहले प्रिय-वचनों द्वारा प्रकृतिस्थ करनेके बाद कार्योपदेश प्रदान करना चाहिए; अन्यथा कोपपूर्ण हृदयमें उपदेशकी बात नहीं ठहरती। यह स्थिरकर, थोड़ी देर मौनावलम्बन करने के बाद बोले—"भाई! कार्य्यमें वीरता, वचन-रचनामें वाक्पटुता, कर्म्मानुष्ठान में धीरता, ये सभी तुम्हारे स्वभाव-सिद्धगुण हैं। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में सभी वस्तुएँ प्रतिफलित होती हैं; उसी प्रकार तुम्हारी विमल-बुद्धि सभी बातोंको ग्रहण करनेमें समर्थ है। पराक्रम-पक्ष, भले क्षत्रियोंके लिए अवलम्बनीय है, यह बात प्रकृत वीर-पुरुष के मुखसे ही निकली है। दूसरा कोई ऐसी बातका प्रस्ताव करनेमें समर्थ नहीं है। तुम जो कहते हो, वही करते हो। तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है; तथापि क्षमावलम्बन श्रेय है या विग्रह विधेय है,—यह कर्त्तव्यावधारण करनेमें, मेरा मन कुछ स्थिर नहीं कर सकता है। सामान्य विषय हो या दुरूह व्यापार हो, कोई सहसा विधेय नहीं है। सहसा विधानके अनेक दोष कहे गये हैं। बिना विचारे जो काम किया जाता है,

उसीको सहसा करना कहते हैं। अविमृष्यकारिता विपद् का कारण है। विमृष्यकारीको लक्ष्मी अपनाती है और अविमृष्यकारीको दरिद्रता अपनाती है। इसीलिए परिणामदर्शी सहसा किसी कामको नहीं कर बैठते हैं। जिस प्रकार लोग यथासमय बीज वपनकर वर्षा-वारिसिक्त बीजका फल शरद् ऋतुमें उपभोग करते हैं; उसी प्रकार मन्त्रित बीजको विवेक-वारिसे सिक्त करके, उपयुक्त समयपर वांछित फल लाभ करना पड़ता है। सूर्य्यके समान नृपति को विशेष-विशेष समयपर मृदुता,तिग्मता, और समता ये गुण अवलम्बन करने पड़ते हैं। किन्तु किस समय किस गुणका अवलम्बन करना चाहिए, यह निर्णय करना सहज नहीं है।

"युद्ध-पक्षका अवलम्बन करके चलनेके लिए शत्रुका बल भली भांति मालूम कर लेना चाहिए। दुर्योधन हम लोगोंसे पराभव होनेकी आशङ्कासे, साम-दाम द्वारा द्वादश राजमण्डलको वशीभूत करके, उन लोगोंके साथ मित्रवत् व्यवहार करता है। प्रजामण्डलीमें द्यूतके कारण जो उसका अपयश फैल गया है, उसको दूर करनेके लिए अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे कामों का अनुष्ठान करता है। सम्मान और सत्कार द्वारा अपने नौकरोंको उसने अपना मित्र बना लिया है। राष्ट्रमें अपनी अलोभिता और अक्रोधिता दिखाने के लिए राजधर्म्म कहकर नियमित कर ले रहा है। अपक्षपातिता दिखानेके लिए शास्त्रानुसार अपकार करनेवाले मित्रको शत्रुके समान दण्ड दे

रहा है। दूसरेका आन्तरिक भाव जाननेके लिए दान-मान-सत्कृत विश्वासी गुप्तचरोंको सर्वत्र नियुक्त किया है। सेना और सेनापतिको दान-मान द्वारा सम्वर्द्धित कर रहा है। आलस्य त्यागकर स्वयं सभी कामोंको देख-रेख रखता है और सख्य-भाव दिखाकर वीर पुरुषोंको अपने अधिकारमें कर रहा है। दुर्योधन-कृत इन सब कार्यों का पता मुझे एक वनचारीके द्वारा मालूम हुआ है। जिन राजाओंको हम लोगों ने उखाड़ फेंका था, उन्हें दुर्योधन यथास्थान रखकर, उन लोगों को सुख-शान्ति पहुँचाता है। जो हम लोगोंसे उत्पीड़ित हुए थे, वे इस समय दुर्योधनके मित्र होकर उसके आश्रयमें आनन्द कर रहे हैं। दुर्योधन उन्हें किसी बातका अभाव नहीं रहने देता है। ये सभी कृतज्ञता प्रकाश करने का अवसर पाते ही प्राणपणसे सुयोधनका हित-साधन करनेमें प्रवृत्त होंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। पितामह भीष्म यद्यपि दोनों-पक्षों पर समान स्नेह रखते हैं, किन्तु चिरकालसे दुर्योधन से अन्न-वस्त्र पा रहे हैं; अतः उस ऋणका परिशोध करनेके लिए रणस्थलमें सुयोधन की ही सहायता करेंगे। उनके समान महारथी रणपण्डित इस पृथ्वीपर कौन है? द्वन्द्व युद्धमें उनका सामना करें, ऐसे वीर पुरुष इस धरातलपर बहुत थोड़े हैं। उनके दिव्यास्त्र निकालनेपर कौन उसे निवारण करनेमें समर्थ है? जिन महापुरुष परशुरामने इक्कीस बार क्षत्रिय-कुलका उन्मूलन किया था, जिन्हें क्षत्रिय-कुलका यमराज कहा जाय,

तोभी अत्युक्ति न होगी। वे भी जब महारथी भीष्मकी दिव्यास्त्र-धारा न सह सके,तो रणस्थलसे भाग गये। उन्हीं महारथी भीष्म के सामने जानेके लिए कौन समर्थ है? आचार्य्य सहोदयोंके अस्त्रोंसे सभीका रण-कण्डूपन दूर होता है। गुरुके साथ युद्ध करनेके लिए शिष्यको साहस नहीं होता। वे वृद्ध हो गये हैं, इसलिए उपेक्षाके योग्य नहीं है। अग्निके प्रज्वलन-भाव त्याग करनेपर भी, तेजके प्रभावसे कोई उसके निकट नहीं जा सकता। आचार्य्य-पुत्र अश्वत्थामा महाबल पराक्रान्त हैं। वे अपने पितासे ब्रह्मतेजके समान अस्त्र पाकर एकान्त दुर्द्धर्ष और अद्वितीय धनुर्वित पिताके निकट धनुर्विद्या सीखकर पारदर्शी होगये हैं। वे कृपाचार्य्यके भागिनेय हैं,धीर प्रकृति और समरमें दुर्जय हैं। ये सभी दुर्योधन-कृत पूजोपहार से उसके ऊपर अनुरक्त हो गये हैं। युद्धमें उनको जीतना कुछ सहज काम नहीं है। कर्ण महाबल पराक्रान्त धनुर्धराग्रणी है। उसका सारा शरीर सूर्य्यदत्त दुर्भेद्य कवचसे आवृत्त है। वह सर्वदा धनञ्जय से विजयकी स्पर्द्धा रखता है। उसके कालपृष्ठ शरासन-निःसृत शर आशीविषके समान भयङ्कर हैं। उसका रण-नैपुण्य अलोक-सामान्य और अतीव चमत्कार-पूर्ण है। कौरवोंकी ओर दुर्योधन का हितैषी उसके समान रण-विशारद दूसरा नहीं है। मैं उसकी वीरता का स्मरण करता हूँ, तो हताश हो जाता हूँ। कहाँ तक कहूँ, उसके दोर्दण्ड प्रभावका जब स्मरण होता है, तो मुझे नींद नहीं आती।

"राजा दुर्योधन केवल दूसरेके बलसे ही बलवान नहीं हैं। वह स्वयं भी बलिष्ठ हैं, और तुम्हारे समान गदा चलानेमें दक्ष हैं। अन्यान्य धृतराष्ट्र-पुत्रोंमें सभी पराक्रमशाली और युद्ध-दुर्म्मद तथा परस्पर सौभ्रात्रगुण-सम्पन्न हैं। तुम सहाय विहीन और बलहीन होकर केवल साहस के भरोसे महाबल-पराक्रान्त सैन्य-सामन्त वीरवृन्द-वन्दित भूपालाग्रणी दुर्जेय दुर्योधन के साथ युद्धके लिये तय्यार हुए हो, इसमें तुम सफल-मनोरथ अभी नहीं हो सकते। गजयूथपति गजेन्द्र के दाँत तोड़नेके समान दुर्दान्त दुर्योधनका उरुभग्न करना सहज काम नहीं है। अतएव भीम, असमसाहसिक अध्यवसायसे विरत होओ। रोगी के समान अभी समयकी प्रतीक्षा करो। रोग जिस प्रकार यथेच्छाचारी कुपथ्यसेवीको आक्रमण कर बलक्षय-पूर्व्वक प्राण ले लेता है; उसी प्रकार तुम भी कालक्रमसे विक्रम दिखाने का अवसर पाकर स्वैर-विहारी दुराचारी दुर्योधनपर आक्रमण करके उसके प्राण संहार कर लेना।" भीम युधिष्ठिरकी युक्ति-युक्त हितगर्भ सारपूर्ण बातको सुनकर अधोवदन हो गये। कुछ भी जवाब नहीं दिया। केवल दीर्घ निःश्वास द्वारा मनका आवेग दूर करने लगे।

उसी समय चारों वेदके विभागकर्त्ता, पुराण-रचयिता, भरत-वंशके बढ़ानेवाले महर्षि वेदव्यास युधिष्ठिरके आश्रम में आये। उन्हें देखते ही युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ उठकर खड़े हो गये और श्रद्धा-भक्तिके साथ उन्हें आसन देकर बैठाया।

भगवान् बादरायण युधिष्ठिर के सत्कार और शिष्टाचारसे प्रसन्न होकर, थोड़ी ही देर विश्राम करके, रास्तेका सब कष्ट भूल गये। इसके बाद युधिष्ठिरको एकान्तमें लेजाकर कहा,—"तपस्याके प्रभावसे मुझे तुम्हारे हृदयके सभी भाव मालूम हो गये हैं। तुम भीष्म, द्रोण, कर्ण प्रभृति वीर पुरुषों से पराभव को आशङ्का करके कुछ उदास होगये हो। मैं उसी शङ्काके दूर करने के लिए तुम्हें प्रतिस्मृति नाम्नी विद्या अर्पण करता हूँ। इसी विद्या के प्रभावसे तुम विपद्से परित्राण पा सकते हो। तुम मेरे उपदेशसे धनञ्जय को इस विद्यामें दीक्षित करके तपस्या करनेमें लगाओ। अर्जुन तपस्याके प्रभावसे और स्वाराधित विद्या के प्रसाद से दिक्पालों से सभी दिव्यास्त्र पा सकेगा और पराक्रम द्वारा पशुपति से पाशुपत अस्त्र पाकर त्रिलोक-विजयी होगा। तुम लोगोंको अब इस स्थान पर अधिक समय तक रहना नहीं चाहिए। एक स्थान पर अधिक दिन रहने से मन प्रसन्न नहीं रहता; बल्कि विरक्ति होनेसे स्थानकी भी रमणीयता नहीं मालूम होती और मृगयाकी सुविधा नहीं होती। अतएव इस स्थानको बहुत शीघ्र छोड़कर काम्यक वनके किसी दूसरे स्थानमें एक अच्छी जगह देखकर वहीं रहो। अर्जुन द्वारा तुम्हारी आशङ्कित शङ्का दूर होगी।" यह कहकर और दिव्य मन्त्र प्रदान करके महर्षि अन्तर्ध्यान हो गये। युधिष्ठिरने मुनिके दिये हुए मन्त्रको पाकर, सन्तुष्ट चित्तसे उस मन्त्रका उपांशु जप कर, कतिपय दिवस अतिवाहित किये। इसके

बाद व्यासजी के उपदेश से, सरस्वतीके तटपर, काम्यकवन के किसी एक स्थान में, वासस्थान निरूपण-पूर्वक कालक्षेप करने लगे।

एक दिन राजा युधिष्ठिर ने स्नेह-सम्भाषण-पूर्व्वक कहा,—"वत्स! तुम भीष्म प्रभृति महारथियोंके बल-विक्रमको भली भाँति जानते हो। उन सबने धनुर्वेदकी सभी शिक्षायें ग्रहण की हैं। उन लोगोने ब्राह्म, दैव, मानुषिक अस्त्र-शस्त्र के प्रयोगमें विशेष निपुणता पायी है। उनकी रण-निपुणता भुवन-भरमें विख्यात है; उनका बल-वीर्य्य भी भयावह है। वे दुर्यो-धनकी सेवासे सन्तुष्ट हैं और उसकी भक्तिसे उसके ऊपर अनुरक्त हुए हैं। कार्य पड़नेपर वे बिना शूरता दिखाये न रहेंगे। दैवकी प्रसन्नताके बिना इन पराक्रमशालियोंको परा-भव करना सहज काम नहीं है। भाई! तुम मेरे बड़े स्नेह के पात्र हो। तुम्हारा बल-वीर्य्य और रण-चातुर्य्य प्रशंसित है। तुममें विवेकशक्ति भी यथेष्ट है। हम लोगोंकी सफलता मिलनेकी आशा तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है। इसलिए दूसरेके लिए जो दुःसाध्य है, वही तुम्हारे लिए सुसाध्य है। तुम्हारे ऊपर एक गुरुतर कार्य्य का भार अर्पण करता हूँ। तुम्हें इस कार्यमें कष्ट हो, तोभी तुम इसे करना। सम्प्रति वेदव्यासजी जो विद्या मुझे दे गये हैं, उस विद्याके प्रभावसे ब्रह्माण्ड प्रत्यक्ष देखा जा सकता है और सभी दुःसाध्य कार्य्य भी सुसाध्य हो जाते हैं। मैं तुमको वही विद्या सिखाऊँगा। तुम संयमी होकर

तपस्या-द्वारा उस विद्याकी सम्यक आराधना करना। देवताओं की प्रसन्नता पानेके लिए प्रयत्न करना। मैं आज ही तुम्हें उस विद्यासे दीक्षित करूँगा। इसके बाद तुम मुनिव्रत धारण कर, धनुर्वाण ग्रहण-पूर्व्वक सीधे उत्तरको तरफ चले जाना। किसीको रास्ता मत देना। इस विद्याका यह नियम विशेष रूपसे पालन करना। देवताओंने वृत्तासुर-युद्धके समय अपने सारे अस्त्र-शस्त्र देवराज इन्द्रको अर्पण किये थे। महेन्द्र ने इन्हीं सब दिव्यास्त्रोंके प्रभावसे महासुरको विनष्ट किया था। तुम उन्हीं को सन्तुष्ट करके, उन्हींसे समग्र दिव्यास्त्र पा सकोगे। अतएव आजही दीक्षित होकर, पुरन्दरके दर्शन करनेके लिये यात्रा करो।" अर्जुन बड़े भाईके उपदेश से उनके निकट उपदिष्ट हो, आराध्य विद्याका नियम पालन करने लगे।

अर्जुन व्यास के बताये हुए नियम के अनुसार दीक्षित होकर, हुत-हुताशनमें आहुति प्रदान-पूर्व्वक, उत्तर की ओर प्रस्थान करनेके लिये उद्यत हुए। ब्राह्मणोंने "अभीष्टसिद्धिरस्तु" कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया। द्रौपदीने अर्जुन को गमनोद्यत देखकर करुणार्द्र चित्तसे कहा,—"महाभाग! द्यूत-सभामें मैंने जो कष्ट पाया है, आज तुम्हारा वियोग-दुःख उसको अपेक्षा अधिकतर मालूम हो रहा है। तुम्हारे बहुत दिनों तक प्रवासमें रहनेसे हमलोगोंको बड़ा कष्ट होगा। हमलोगोंका सुख-दुःख अब तुम्हारे ही हाथ है। तुम जिस काम के लिये जारहे हो,

वह महापुरुष का ही कार्य्य है। मैं अपने इष्ट देवता से प्रार्थना करती हूँ, कि जिससे तुम निर्विघ्न सफलता पाकर लौटो। कुल-देवता तुम्हारा कल्याण करेंगे।" यह पार्थ से कहा और अमङ्गलके भय से बड़े कष्ट के साथ अश्रुजल को रोक रक्खा।

अर्जुन बद्धपरिकर और परिग्टहीतास्त्र होकर हिमालय की ओर चले। तपस्विगण-सेवित नाना स्थान लांघकर अन्तमें हिमाचलके शिखर पर जा पहुँचे। किसी स्थान पर थोड़ी देर भी विश्राम न कर, हिमालय के गन्धमादन शृङ्गको उल्लङ्घन किया, और अहोरात्र अविश्रान्त पर्य्यटन करके इन्द्रकील पर्व्वतके शिखर पर जा पहुँचे। इसी समय गमनोन्मुख अर्जुनने "तिष्ठ, तिष्ठ" शब्द सुना। इतस्ततः दृष्टि निक्षेप करके, शब्द-हेतुका अनु-सन्धान करते हुए देखा, कि सम्मुखस्थ वृक्षके नीचे विप्रवेशधारी दीर्घ-जटाजूट-सम्पन्न पिङ्गलवर्ण तपःक्षश तपस्वी खड़े हैं। उन्होंने अर्जुनको विवक्षु देखकर पूछा,—"तात! यह शमप्रधान प्रदेश है। यहाँ विनीत वेशसे आना चाहिये। तुमने तापसोचित मृगचर्म्म धारण किया है, और साथ ही शरासन और शरग्रहण किया है; इस परस्पर-विरोधी वेशका परित्याग करो। यहाँ कोई तुम्हारे साथ लड़नेवाला योद्धा नहीं है। यहाँ तुम्हारे अस्त्र ग्रहण का प्रयोजन ही नहीं दीखता। अतएव इस भयावह वेशको छोड़कर तपस्वि-वेश से धर्म्माचरण करो, इससे उत्तमा सिद्धि लाभ कर सकोगे।" अर्जुन बिना कुछ उत्तर दिये, आगे बढ़ने लगे। तपस्वी उनका गमन-प्रतिरोध करने लगे।

अर्जुन भी गुरु का उपदेश स्मरण कर, तपस्वियोंके गमन का अन्तराय होना अनुचित होनेपर भी और उनको अतिक्रमण करना अवैध होनेपर भी, बलसे तपस्वी को अतिक्रमण करने की चेष्टा करने लगे। तब विप्रवेशधारी महेन्द्र ने अर्जुन को स्वावलम्बित व्यापारसे प्रतिनिवृत्त करना दुःसाध्य समझकर कहा,—"वत्स! मैं तुम्हारा दुरूह अध्यवसाय देखकर सन्तुष्ट हुआ हूँ। वर मांगो; यह मेरा मायामय शरीर है। इसको अब छोड़ता हूँ। मैं सुरराज इन्द्र हूँ। मेरा स्वरूप देखो।" अर्जुन ने उनके सहस्र-चक्षुओं की उज्ज्वल ज्योति और स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर उन्हें वास्तवमें सुरपति समझा और प्रणिपात-पूर्व्वक हाथ जोड़कर कहा,—"भगवन्, यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं आपके निकट पूर्ण चतुष्पाद धनुर्विद्याकी शिक्षा लेने के लिये आया हूँ। मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।" देवराजने कहा,—"वत्स! तुम जिस समय तपस्तुष्ट भगवान् भूतभावन भवानी-पति से भेंट करोगे, उसी समय मैं समग्र दिव्यास्त्र तुम्हें प्रदान करूँगा। इस समय तुम पाशुपत व्रतका अवलम्बन कर, देवादिदेव महादेव की आराधनामें यत्नवान् होजाओ। शीघ्र ही तुम्हारी मनस्कामना पूरी होगी।" यह बात कहकर सुरपति अन्तर्ध्यान हो गये। धनञ्जय भी ईश्वराराधनामें मन लगाकर धीरे-धीरे कठोर तपस्या करने लगे।

इधर पाण्डव अर्जुन के वियोग में मानसिक दुःख से अपना समय बिताते थे। वे सभी शोकाकुल हो, अर्जुनको सम्बो-

धन कर, विलाप और परिताप करते थे और उनके वियोग-दुःखसे अभिभूत हो, कोई अर्जुन के लोक-सामान्य गुण, कोई अतुल-बल-विक्रम, कोई अलौकिक रण-चातुर्य्य, कोई असाधारण धैर्य्य-गाम्भीर्य्य, और कोई उनके कार्य और साहस की बात का उल्लेख करके अश्रुपात करते थे। राजा युधिष्ठिर एकान्त धीर-प्रकृति और नितान्त गम्भीर स्वभावके थे ; तथापि वे अर्जुन के गुणों का स्मरण करके और भाइयों का अर्जुन-सम्बन्धी विलाप सुन कर अधीर होरहे थे। कोई मनुष्य चाहे कितनेही धीर-स्वभाव का क्यों न हो, वह शोक-सन्तापसे द्रवीभूत न हो, यह स्वभाव-विरुद्ध है। राजा युधिष्ठिर धैर्य्य-गाम्भीर्य्य प्रभृति समुदय सद्गुणोंके आधार होनेपर भी, अर्जुन के वियोग से अधीर होगये थे, यह अचम्भे की बात नहीं है। हृदय में ताप होनेपर कौन स्थिर रह सकता है ? चेतना-सम्पन्न जीव की तो बात ही नहीं, अचेतन कठिन लोह भी सन्ताप से धातुनिस्रव रूपसे गलित हो जाता है। स्वभाव-शीतल जलराशि भी वाड़व-योग से वाष्परूपमें परिणत होता है। राजा युधिष्ठिर अर्जुन का गुणानुवाद सुनना पसन्द करते थे। अर्जुन जिधर गये थे, उधरही की ओर देखनेको उत्सुक रहते थे, और उधर से आये हुए ऋषियोंके मुखसे अर्जुन की कठोर तपस्या का विवरण सुनकर, शोकसे अभिभूत हो जाते थे और अजस्र अश्रुपात करते थे। बीच-बीचमें, "मैं अत्यन्त स्वार्थी हूँ, केवल अपना अभिलषित सम्पादन करनेके

लिये तुम्हें वायु-भक्षण-स्वरूप उग्रतर तपस्यामें लगाया है, मेरी अभिलाषाको धिक्कार है ! मेरे जीवित रहते तुम्हें इतना क्लेश भोग करना पड़ता है, मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है ! बड़ा होकर मैं छोटे का क्लेश दूर नहीं कर सका, मेरी इस वयोज्येष्ठताको धिक्कार है !" इसी प्रकार प्रायः विलाप करते थे। स्नेह का ऐसाही धर्म्म है। जिसका कठोर कार्य सुननेसे दुःख होता है, फिर उसीको सुनने की इच्छा होती है, और उसीके द्वारा विरह-विनोदन होता है। राजा युधिष्ठिर अर्जुन को तपःक्लेश-जनित यन्त्रणा को सुनकर निरतिशय दुःखी होते और उधर से आये हुए ऋषियोंके शरणापन्न हो, आग्रह के साथ अर्जुन की तपस्या-विषयिणी क्लेशदायिनी बात सुनना पसन्द करते थे।

कुछ दिनों के बाद देवर्षि नारद धनञ्जय-वियोग-विधुर युधिष्ठिर के आश्रम में पहुँचे। राजा युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ महर्षि को यथाविधि पूजा करके, अत्यन्त विनीत भावके साथ मुनिवर का आगमन-कारण पूछा। तपोनिधिने थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद कहा,—"धर्म्मराज ! मैं प्रति दिन अर्जुन को देवसभामें देखता हूँ। वे सकुशल हैं, और दिव्यास्त्रों का अभ्यास कर रहे हैं।" यह कहकर उनके चिन्ताकुल अस्थिर चित्तको सुस्थिर किया और आश्वासन-पूर्ण वाक्यों से उनकी मनोव्यथा को कुछ हलकी करके कहा,—"अर्जुन महेन्द्रके किसी असाध्य देव-कार्यका साधन

करने के लिये, कुछ दिनोंतक सुरपुरमें रहेंगे; तब तक आप तीर्थों में घूम-घूमकर अपना मन बहलाइये। आपको तीर्थाटन की राय देनेके लियेही मैं यहाँ आया हूँ। तीर्थस्थलों में सच्च-रित्र पुण्यशील महात्मा निवास करते हैं। उनका आचार-व्यवहार देखनेसे सत्कर्ममें श्रद्धा होती है और भक्ति-वृत्ति बढ़ती है। इन्हीं सब महात्माओं के सहवास और सदालाप से अन्तःसन्ताप का ह्रास होता है। पवित्र तीर्थ-स्थल का दर्शन करनेसे अन्तःकरणमें शान्तिरस का उद्रेक होता और चित्त-शुद्धि तथा मनस्तुष्टि होती है। अहङ्कार-बुद्धि दूरी-भूत और ऐहिक तत्त्व का निर्णय करनेमें बुद्धि की गति होती है। इन्हीं सब सत्प्रवृत्तियों की उद्दीप्ति होती है, इसीसे महा-पुरुष तीर्थ-दर्शन से आत्म-विनोदन करते हैं। तीर्थ अत्यन्त पवित्र पुण्यभूमि हैं, किन्तु अनेक तीर्थ हिंस्र जन्तुओंसे आकीर्ण और अत्यन्त भयावाह सङ्कटके स्थानों पर हैं। उनका मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। पहाड़ी रास्तों की जानकारी रखनेवाला कोई पथ-प्रदर्शक यदि साथ रहे, तभी वहाँ जाना हो सकता है। अतएव थोड़े दिनोंमें महामुनि लोमश आपके साथ भेंट करनेके लिये यहाँ आवेंगे। उन्हींको साथमें लेकर आप तीर्थ-भ्रमण करनेके लिये जाइयेगा। देवर्षि लोमश बारम्बार तीर्थ पर्य-टन करके इस विषयमें बहुदर्शी होगये हैं। अग्नि जिस प्रकार सभी काष्ठोंको जलाकर भस्मीभूत कर देता है; उसी प्रकार तीर्थ-पर्यटन, पर्यटन करनेवाले के अशेष पापको नष्ट कर देता

है। इसीसे देवगण और ऋषिगण सभीने संयमी होकर तीर्थ-पर्यटन करके अशेष पुण्य-सञ्चय किया है। अतएव आप विधि-पूर्व्वक तीर्थ पर्यटन करने से पूर्ण-मनोरथ होइयेगा।" देवर्षि इस प्रकार उपदेश देकर अन्तर्धान होगये।

राजा युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ परामर्श करके तीर्थ-यात्रा करने का विचार स्थिर किया। अनन्तर पुरोवर्त्ती पुरोहित धौम्यसे बड़ी प्रतिष्ठाके साथ कहा,—"महाशय! मैंने अर्जुनकी क्षमता और अध्यवसाय जानकर, दिव्यास्त्र पानेके लिये महेन्द्र की आराधना में उसको नियुक्त किया है। सौभाग्यसे वह क्षत-कार्य भी हुआ है, और इस समय देवताओंका कार्य करनेमें लगा हुआ है। यह बात मुझसे महामुनि विश्वस्तवाणी नारदने अपने मुखसे कही है। इससे मुझे राज्योद्धार होनेकी आशा होरही है। धनञ्जयको यदि दिव्यास्त्र न मिलते, तो अतिरथ भीष्म और महारथी द्रोण प्रभृतिके साथ संग्राम करने की आशा भी मैं नहीं कर सकता था। महावीर कर्णरूप प्रलयाग्नि की क्रोध-धूमायित अस्त्रजाल-शिखाके, दुर्योधनरूप महापवनोद्दीपित हो, हमलोगोंके सैन्यरूप तृणराशिको जलाने के लिये उद्यत होनेपर, दिव्यास्त्ररूप विद्युन्मालामण्डित, गाण्डीव शत्रुधनुर्भूषित कृष्णमेघ चालित, अर्जुनरूप कल्पान्तावर्त्तक शस्त्रजालरूप वारि की वर्षा न करनेसे उसकी शान्ति नहीं होगी। मैंने इन्हीं सब कारणों से अर्जुन को सुरेन्द्रकी सेवा करने के लिये भेज दिया है। अर्जुन से जैसी आशा थी, वैसा

हो काम भी होरहा है; तथापि स्नेह का ऐसा धर्म्म है, कि वह प्रिय-वियोग सह्य नहीं करने देता। स्नेह, विपद् और अनिष्ट-शंका करता है, अथच इष्टका सम्पादन करनेमें नितान्त लोलुप होता है। विपद् में पतित और अनिष्टापातमें शङ्कित न होनेसे कोई अभीष्ट-सिद्धि नहीं कर सकता। इसीलिये मेरा चित्त अर्जुन के वियोग से अस्थिर और उसका प्रिय करने के लिये नितान्त उद्विग्न होरहा है। मैंने कार्यके अनुरोध से उसको यहां से अलग किया है, इस समय पश्चात्ताप से अनुतप्त होरहा हूँ। अर्जुन के विरहमें कोई वस्तु मुझे अच्छी नहीं लगती। रमणीय काम्यक वनकी रमणीयता ज्ञात नहीं होती। मैं जिन-जिन स्थानों को देखता हूँ, उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर अर्जुन के कोई न कोई कार्य स्मृति-पथमें आकर मुझे कातर कर देते हैं। इसलिये अन्यत्र जाना आवश्यक हुआ है और वृथा पर्यटन न हो, इसलिये तीर्थ-भ्रमण करने का विचार किया है। आप तीर्थ की महिमा सुनाइये, हमलोग वहीं चलकर ठहरेंगे। चातक जिस प्रकार जलधर का समय लक्ष्य कर जलदावलिकी प्रतीक्षामें ग्रीष्मकाल यापन करता है, उसी प्रकार हमलोग भी अर्जुन के आने की प्रतीक्षा में वर्त्तमान समय बिता देंगे।"

धौम्यने कहा,—"महाराज! पहले पूर्व ओरके तीर्थों का विवरण सुनाता हूँ। सुनिये, पूर्व ओर नैमिषक्षेत्रमें पवित्र देवतीर्थ संस्थापित है। वहां गोमती नदीने प्रवाहित होकर

देवताओं की यज्ञवेदी और ऋषियोंके सभी आश्रमोंको वेष्टित कर रखा है। उसके अन्तर्गत जय नामक पर्वत पर गदाधर-चरण-चिह्नित जयशिर नामक महातीर्थ प्रतिष्ठित है। उसी स्थानपर पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करने पर ऊपर के दस और नीचे के दस सीढ़ी तकके पूर्वपुरुषों की सद्गति होती है। इसी स्थान पर महानदी फल्गु अन्तः सलिलरूपसे प्रवाहित हुई है। इस नदीका यह आश्चर्य गुण है, कि लोगों को इस पार से उस पार तक आने जानेमें कष्ट नहीं होता। नदीके ऊपर फल-फूल शोभित तरुलता विराजित हैं। बालुका हटाते ही भीतर से सुनिर्मल सुस्वादु जल मिल जाता है। अक्षय वट अबतक इस स्थानपर समानभावसे तरुणावस्था में विद्यमान है। उसके मूलमें जल प्रदान करनेसे वह अक्षय होता है। इस प्रदेशमें पुण्यतरा कौशिकी नदी और पुण्य-सलिला भागीरथी विद्यमान हैं। कौशिकी के तट पर विश्वामित्र ने, क्षत्रिय होनेपर भी, नदी की महिमा से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है। भागीरथीके किनारे भागीरथने बहुदक्षिणक अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। इन सब यज्ञतीर्थोंका दर्शन करने से मनुष्य विगतपाप होजाते हैं। इसी प्रदेशमें कान्यकुब्ज नगर है। इसी नगरमें विश्वामित्र ऋषिने इन्द्रके साथ सोमरस पान-करके, अपने तईं ब्राह्मण कहकर अभिमान प्रकाश किया था। उसके पासही सर्वजन-विदित गङ्गा-यमुनाका-सङ्गम जहाँ हुआ है, वह पवित्र पुण्यभूमि है। उस भूमि पर भूतस्रष्टा प्रजापतिने

याग किया है, इसीलिये इस स्थानका नाम प्रयाग हुआ है। इसी स्थानसे सागरगामिनी सुरतरङ्गिनी गङ्गाने कालिन्दीके साथ मणिकर्णिकामें प्रविष्ट होकर, काशीतलमें ब्रह्मशिला नामक दर्शनफलद महातीर्थ प्रतिष्ठित किया है। इसी स्थानपर मतङ्ग मुनिका विख्यात केदार नामक आश्रम विराजमान है।

दक्षिण की ओर गोदावरी, वेणागङ्गा और पयोष्णी नदी प्रवाहित हुई हैं। इन सब तटनियोंके तट पर वेदतीर्थ, चन्द्रातीर्थ और अशोकतीर्थ प्रतिष्ठित हैं। पाण्ड्यदेशमें अशोकतीर्थ वारुणतीर्थ और कुमारिका तीर्थ प्रसिद्ध हैं। ताम्रपर्णी तीर्थमें राज्य की कामना से तपस्या करने पर मनुष्य पूर्ण-मनोरथ होता है। देव-सोम पर्वत पर गोकर्ण नामक एक विख्यात सरोवर है। उसका जल अतलस्पर्श और सुस्वादु है। इसी पर्व्वत के दूसरे शिखर का नाम वैदूर्य्य गिरि है। वहाँ महामुनि अगस्त का एक आश्रम दीख पड़ता है। सुराष्ट्र देशमें, समुद्र-तट पर, प्रभास तीर्थ और पिण्डारक तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं। उनके निकट फलपुष्प-शोभित मृगपक्षि-समाकीर्ण उज्जयन्त पर्वत है। इस पर्वत पर चढ़नेसे श्रीकृष्ण की प्रसिद्ध द्वारावती नगरी दिखाई पड़ती है।

पश्चिम की ओर अवन्तिदेशमें नर्म्मदा नदी प्रवाहित होती है। उसका जल इतना निर्मल और विशुद्ध है, कि देवर्षि और सिद्ध चारणगण उसमें अवगाहन करके तृप्त होते हैं। उसके

तट पर विश्रवण मुनिका आश्रम है। इसी आश्रममें यक्षेश्वर कुवेरने जन्म-ग्रहण किया था। इस प्रदेशमें विश्वामित्र नाम की एक नदी तीर्थ-रूपसे प्रसिद्ध है। इसके तट परसे च्यवन-ह्रद, मैनाक और असित गिरि,—दिखते हैं। इस प्रदेशमें बड़े-बड़े तपस्वी ऋषियोंके अनेक आश्रम हैं। केतुमाली, प्रसिद्ध पुष्कर-तीर्थ और वैखानस मुनियोंके आश्रम-समूहसे यह प्रदेश परिपूर्ण होरहा है।

"उत्तर को ओर सरस्वती और यमुना नदी बहती हैं। इस प्रदेशमें अग्निशिर नामक एक तीर्थ है। वहाँ सार्वभौम भरतने बहुसंख्यक अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। जिस शर-भंग मुनिने अपने शरीर को अग्निमें आहुति-स्वरूप प्रदान कर दिया था, उनका पुण्यतर आश्रम इसी स्थानपर है। जहाँ भागीरथी हिमालय महाशैलको वेगवलसे विदीर्ण करके प्रवा-हित हुई है, वह स्थान अत्यन्त पवित्र गङ्गाद्वार नामसे महा-तीर्थोंमें विख्यात है। सनातन भगवान् विष्णुने जिस स्थान-पर तपस्या की थी, उस स्थानका नाम नरनारायणाश्रम है; भूतलमें उसके समान तीर्थ दूसरा नहीं है। उसके बाद वदरिकाश्रम है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ विद्यमान हैं, वे सभी तीर्थ यहाँ भी विद्यमान हैं। वदरिकाश्रम अत्यन्त रमणीय स्थान है। इसी स्थान पर हमलोग अर्जुन के शुभागमन की प्रतीक्षा में रहेंगे। महाराज! पृथ्वी पर असंख्य तीर्थ हैं। उनमें से प्रत्येक का वर्णन करना सामर्थ्य के बाहर है।

केवल जो सब तीर्थ समधिक प्रसिद्ध हैं, संक्षेपमें उन्हीं का उल्लेख किया है। इस समय आप अपने परिवारके साथ इन सब तीर्थों में परिभ्रमण कीजिये। आपकी उत्कण्ठा दूर होगी। और पवित्र धर्म सञ्चित होगा।"
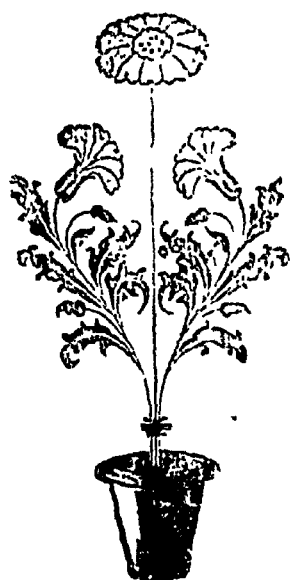
सातवाँ परिच्छेद।

स्वर्ग से देवर्षि लोमश का आगमन।

पाण्डवों को अर्जुन का सम्वाद मिलना।

इसी समय अपने प्रभापुञ्जसे नभोमण्डलको उद्भासितकरके, लोमश ऋषि युधिष्ठिरके आश्रममें पहुँचे। राजा युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ उठकर उनका यथोचित पूजा-सत्कार किया। अनन्तर आसन पर सुख पूर्वक बैठे हुए महर्षि से हाथ जोड़कर पूछा,—"महर्षे! आपके शुभागमन का प्रयोजन पूछने की इच्छा मुझे मुखरित करती है; इसीसे मैं आपके आगमन का कारण पूछने का साहस करता हूँ। बिना किसी प्रयोजनके किसी काममें किसीको प्रवृत्ति नहीं होती और कोई परिभ्रमण के आयासकी भी चेष्टा नहीं करता। आपका सुरलोक छोड़कर भूलोकमें आनेका प्रयोजन अनुभव-विरुद्ध है। भूलोक के रहनेवाले स्वर्गीय सौन्दर्य के देखने की इच्छासे स्वर्गलोकमें जाना चाहते हैं। मर्त्यलोकमें वैसी रमणीयता और दर्शनीयता नहीं है, कि जिसके द्वारा वह स्वर्गीय लोगों को इस लोकमें आनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न कर सके। प्रयोजन होने

पर भी, आपके पर्य्यटन का क्लेश स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती। अपनी महीयसी चमताके प्रभाव से जब आप सभी काम अपने स्थान पर बैठे-बैठे करा सकते हैं, तब यह परिभ्रमण-प्रयास अङ्गीकार करने की आवश्यकता क्या थी? यदि कोई यह कहे, कि पृथ्वीके देखनेका कौतूहल आपको यहाँ घसीट लाया है, तो यह भी बुद्धि-गम्य नहीं होता। जब आप ज्ञान-नेत्रों से भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान त्रैकालिक वृत्तान्त को प्रत्यक्ष कर लेते हैं, और इच्छामात्रसे एक और त्रिलोक की सृष्टि कर सकते हैं, तब आपका भुवनावलोकन तर्कसिद्ध नहीं होता। मुझे तो यह प्रतीत होरहा है, कि केवल हम-लोगोंको पवित्र करनेके लिये ही आपने यहां आने का कष्ट स्वीकार किया है। भक्तवत्सल देवताही तदर्पित-चित्त-भक्त का मनोरथ पूर्ण करनेके लिये, सेवक के आगे आविर्भूत होते हैं। मैं भी जब आपके दर्शन का प्रार्थी हो, एकान्त मनसे आपका स्मरण करता हूँ, तब मेरी मनोभिलाषा पूर्ण न करनेसे, भक्त-वत्सल नामके गौरव की रक्षा नहीं होती; अतएव केवल मुझे पवित्र करनेके लिये ही आपका यहां आगमन हुआ है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।"

देवर्षि ने कहा,—"धर्मराज! मैं जिस उद्देश्यसे यहाँ आया हूँ उसे सुनिये। मैं एक दिन अपनी इच्छासे पुरन्दरके घर जाकर, एक अपरिचित युवक को देवेन्द्र के साथ एकही सिंहासन पर बैठा देख, बड़े विस्मयमें पड़ गया। मुझे विस्मित

सुरपति की सभामें अप्सरायें नाच-गान कर रही हैं, धनञ्जय देवेन्द्र के साथ एकही आसन पर बैठे हैं, देवर्षि लोमष पुरन्दर से मिलने आये हैं। (पृ० १५८)

NARSINGH PRESS CALCUTTA

देखकर देवराजने कहा,—'सुरर्षे ! इनका नाम धनञ्जय है। ये तृतीय पाण्डव हैं। अपने भाई की आज्ञा पाकर तपके बलसे यहाँ आ पहुँचे हैं। इनको न देखने से काम्यक वनमें धर्म्मनन्दन उत्कण्ठित हैं। आप मेरे अनुरोधसे वहाँ जाकर अर्जुनका सारा वृत्तान्त उनसे, कहकर उन्हें सुस्थचित्त कीजिये।' मैं सुरेन्द्र की आज्ञासे यहाँ आया हूँ। इस समय आप, आपके भाई और द्रौपदी सभी अर्जुन का समाचार सुनें। महावीर अर्जुनने तपश्चर्य्या और वीरत्व-प्रदर्शन द्वारा आशुतोष महादेव से जो समन्तक अस्त्र पाया है, उसका नाम पाशुपत है। वह अमृत से उत्पन्न और सर्वत्र अप्रतिहत तथा अकुण्ठित है। जो मनुष्य उसका प्रयोग करनेमें समर्थ है, उसका कहीं पराभव नहीं हो सकता। अर्जुनने जीवितेश्वर, जलेश्वर, सुरेश्वर और अन्यान्य दिक्पालों से दण्ड-पाश वज्र प्रभृति दिव्यास्त्र पाकर, उनके प्रयोग करने में पूरी निपुणता प्राप्त की है। चित्रसेन गन्धर्व के निकट चौसठ प्रकारके बाजों और अन्यान्य गान्धर्व विद्याओंमें पारदर्शी हो, स्वर्गमें सुखसे वास करते हैं। इस समय वे देवताओं का कोई असाध्य कार्य्य सम्पादित करेंगे। इसके बाद आपसे मिलेंगे। महेन्द्रने आपको उपदेश दिया है, कि आप धर्म्म-प्रिय हैं, सतत धर्म्मानुष्ठानमें प्रवृत्त रहियेगा। सुसेवित धर्म्मके प्रसादसे अपहृत राज्य का पुनरुद्धार करनेमें समर्थ होइयेगा। सेनानी-तुल्य महाबल पराक्रान्त कर्ण अद्वितीय होने पर भी, योद्ध-निकषतुल्य अतुल विक्रमशाली धनञ्जयके रणनैपुण्य के शतांश

क्या एकांश की भी बराबरी नहीं कर सकता है। आप मन-ही-मन कर्ण से जिस बात की आशङ्का करते हैं, उसका परित्याग कीजिये। अर्जुन से जब आपका साक्षात्कार होगा, तब समझ जाइयेगा, कि धनञ्जयने अपनी कितनी उन्नति की है; अधिक क्या कहूँ? मैंने भी अर्जुनके ऊपर रिपु-विजयाशा निश्चय की है। आप निश्चिन्त मनसे सङ्कल्पित तीर्थोंमें भ्रमण कीजिये। मेरे अनुरोधसे महर्षि लोमश तीर्थ पर्यटनके समय आपके रक्षक-स्वरूप हो, अहित निवारण और हिंस्रजन्तुओंसे परित्राण करेंगे।" महाराज! मैं पुरन्दर के नियोगसे और अर्जुनके अनुरोधसे आपलोगोंका रक्षक-स्वरूप होकर यहाँ आया हूँ। मैं पहले दो बार समग्रतीर्थों के परिभ्रमण करनेवालोंमें बहु-दर्शी होगया हूँ। इस समय आपलोगोंके साथ परिचित सभी तीर्थों का पुनर्दर्शन करके परम सुखी होऊँगा।"

युधिष्ठिरने कहा,—"सुरर्षे! आपके दर्शनसे मैं धन्य हुआ। इतने दिनोंके बाद मेरा सौभाग्य बलवान हुआ। आप जैसे महा-पुरुषोंके साक्षात्कार को सौभाग्यके फलके सिवा और क्या कह सकता हूँ? कृतपुण्य धन्यव्यक्ति ही सुरपूज्य देवर्षि के दर्शन का अधिकारी होता है। मैंने स्वार्जित पुण्यका फल इसी लोकमें भोग कर लिया। सुरपतिका अनुग्रह पूर्वजन्मके सञ्चित पुण्यका फल है। जो मनुष्य महेन्द्र का स्मरण करता है, भूमण्डलमें वही धन्य है। मैं महेन्द्र द्वारास्मृत और ज्ञात हुआ हूँ, इसकी अपेक्षा मेरे लिये अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती है? भाई

सुरेन्द्र के साथ एक आसन पर बैठा, यह देवर्षि के समागम और दैवानुग्रह के फल को छोड़कर और क्या कहा जा सकता है ? सम्प्रति, सर्वथा मैं धन्य और मेरा जीवन सार्थक होगया। मैंने पहले ही तीर्थयात्रा का सङ्कल्प किया है, और इसके लिये मैं तैयार होगया हूँ। इस समय आप जब अच्छा समय निरूपण करके, तीर्थ-यात्राके लिये आज्ञा दीजियेगा, उसी समय आपके पीछे-पीछे हमलोग गमन करेंगे।" लोमशने कहा, "धर्मराज! बड़े परिवारके साथ चलनेमें अनेक विघ्नों की सम्भावना है; अतएव आप परिवार की संख्या कम कर दीजिये।" राजा युधिष्ठिरने महामुनि लोमशके उपदेशानुसार अपने अनुयायिओंसे कहा,—"जो मनुष्य दूर-देश-परिभ्रमण करनेमें, शीत-वातादि सञ्जात क्लेश सहने और दुर्गम गिरि के लाँघनेमें असमर्थ हों, जो भोजन-विलासी और सर्वदा सुखाभिलाषी हों, वे तीर्थ-भ्रमण से निवृत्त हो, अपने-अपने निवास या पाञ्चाल-देशको चले जायँ और क्लेश-सहिष्णु अध्यवसायशील लोग हम-लोगोंके साथ चलें।" राजा की बात सुनकर, अशक्त नगरनिवासियों और फलस्पृहाशून्य यतिवर्गने लौटने की इच्छा प्रकट की। राजा युधिष्ठिरने समादर और सम्मान द्वारा उनलोगोंको सन्तुष्ट करके भेज दिया। स्वयं गृहीतव्रत और तीर्थव्रतीगणसे परिवृत्त होकर, तीन रात वहाँ और ठहर गये। चौथे दिन कृत-स्वस्त्ययन, बद्धपरिकर और गृहीतायुध हो, परिवार और अनुज-वर्ग के सहित तीर्थ-गमनोचित विहित व्रत धारण किया।

अनन्तर अभिनन्दनके लिये आये हुए ऋषियोंकी पादवन्दना करके और महर्षि लोमश को आगे करके प्रशस्त समयमें तीर्थ-भ्रमण करने के लिये, पहले पूर्व की ओर प्रस्थान किया ।

रास्तेमें राजा युधिष्ठिरने सुरर्षि को सम्बोधन करके कहा, "देवर्षे! भ्रमणके समय कोई प्रसङ्ग उठा, परिभ्रमण करनेसे पर्यटन का कष्ट बहुत कम हो जाता है; इसलिये मैं पूछता हूँ, कि यद्यपि मैं जान-बूझकर अधर्म्म नहीं करता; यथायोग्य धर्म की सेवा करता हूँ; धर्म का फल सुख है और अधर्म का फल दुःख है, यही मेरा विश्वास है; तथापि अन्य राजाओं की अपेक्षा मैं अधिक दुःख पारहा हूँ और मेरे शत्रु अधर्म्मका आचरणकरके राजसुख-सम्भोगसे सुखी हो रहे हैं; इसका कारण क्या है?"

लोमशने कहा,—"धर्म्मराज! दुरात्मा अधर्म्माचरण-द्वारा आपाततः सुखी देखे जाते हैं सही, किन्तु उनका यह सुख क्षणस्थायी है। पापात्माओंको सुखप्रद वस्तु पहले बहुत बढ़ती है। अन्तमें, एकही समय, समुदय सुखदायक पदार्थ विनष्ट होकर-उनके अशेष दुःखके कारण होजाते हैं। पापात्माओंका सुख प्रायः अन्तमें दुःख-निदान हो जाता है। धर्म्मराज! जन्म-मृत्यु-परिवर्त्तनशील यह संसार परीक्षाका आगार है। जन्ममृत्युके वशीभूत मनुष्य जबतक कर्म्म द्वारा उत्कर्ष लाभ नहीं कर सकेंगे, तब तक जातमृत होकर पुनः-पुनः इस संसार में आया-जाया करेंगे। सुख-भ्रमसे संसारके दुःखमय तरङ्ग में भ्रमित होंगे और सांसारिक प्रलोभनसे बारम्बार विमो-

हित और प्रतारित होकर, स्वकीय उद्देश्यको समझ सकेंगे। धर्म्मव्यतीत सुख नहीं मिलता। अधर्म्म बिना दुःख नहीं होता। पापात्मा धर्म्मके फल सुख की वाञ्छा करते हैं और स्वार्थ-द्वारा अधर्म्म की सेवा करके अन्तमें दुःख-भोग करते हैं। इसीसे उनका सुख स्थायी नहीं होता। धर्म्मात्माओंकी बुद्धि धर्म्म-विषय पर स्थिर रहती है या नहीं, इसकी परीक्षा करने के लिए, पर्याय-क्रमसे उनको सुख और दुःख दिया जाता है। इस उपायसे अधार्म्मिकों की परीक्षा भी होती है। किन्तु धार्म्मिक सभी अवस्थाओं में एक समान रहते हैं; अधार्म्मिक सुखके समय सन्तुष्ट और गर्वित एवं दुःखावस्था में असन्तुष्ट और खिन्न रहते हैं। इसी कारणसे धार्मिक धर्मके अनुग्रह-पात्र और अधार्मिक उसके निग्रह-भाजन होते हैं। इसी निमित्त धार्मिकोंका सुख चिरस्थायी होता है और अधार्म्मिकों का सुख क्षणस्थायी होता है। जो अधार्मिक होते हैं, वे इन्द्रिय-तृप्तिकर सुखको ही परम पदार्थ समझकर, उसकी सेवाके लिये सदा व्यग्र होते हैं: और धार्मिक सुख-दुःख को इन्द्रिय-भोग्य समझकर, उसमें आस्था नहीं दिखाते हैं; केवल आत्माकी उन्नतिमें सदा यत्नवान् रहते हैं और आत्मो-न्नति करके, वास्तविक सुखका अनुभव करते हैं।

सुखभोगसे इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं। वे अपने सुखके लिये ही आत्मा का उस ओर आकर्षण करती हैं। आत्मा भी उद्धत इन्द्रियोंसे लाचार हो, उनकी भलाई करनेमें प्रवृत्त होता है

और अपना कर्त्तव्य-कर्म भूल जाता है । इसी प्रकार पवित्र आत्मा इन्द्रियोंके वशीभूत हो, क्रमशः निस्तेज हो जाता है; उसकी फिर उन्नति नहीं होती । जो धर्मात्मा होते हैं, वे सदा सावधान रहते हैं, कि जिससे आत्मा इन्द्रियोंके वशीभूत न होने पावे । वे इस बातकी सदा चेष्टा करते हैं, कि जिसमें इन्द्रियाँ ही आत्माके वशीभूत होकर रहें । इन्द्रियाँ भोग से तृप्त नहीं होतीं, बल्कि प्रदीप्त होती हैं । यह निश्चय जान कर, महात्मा सुख-भोग्य वस्तुसे इन्द्रियोंको दूर रखनेका प्रयास करते हैं । दुःखसे इन्द्रियाँ शान्तभाव धारण करती हैं, इसीसे दुःखको इन्द्रिय-निग्रह का कारण समझते हैं । विशेषतः, दुःख सांसारिक परीक्षाका प्रश्न है और सुख उसका पुरस्कार है । इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकनेसे, पुरस्कार-सुख मिल सकता है; किन्तु अनुत्तीर्ण होनेसे ही सदा दुःखसे अभिभूत रहना पड़ता है । अधार्मिक मनुष्य दुःखसे अभितप्त हो, अधर्माचरण द्वारा इन्द्रियोंको तृप्ति करते हैं । इन्द्रिय-तृप्ति-सम्भूत सुखसे अपने तईं सुखी समझते हैं । धार्मिक पुरुष ऐसे सुखको सुख नहीं समझते । आप अपने शत्रुओंको सुखी समझते हैं; किन्तु वास्तव में वे प्रकृत सुखसे सुखी नहीं हैं ।”

इस प्रकारकी विविध उपदेश-पूर्ण बातोंको सुनते हुए, राजा युधिष्ठिर तीर्थ पर्यटन करते-करते, सर्वतीर्थमय पुष्कर तीर्थमें कुछ दिन रहकर, प्रसिद्ध प्रभास तीर्थमें पहुँचे,—और वहाँ

विधानानुसार स्नानादि कार्य्य समाप्त करके बैठे थे। धर्म्मविषयिणी बातें हो रही थीं, कि इसी समय यदुवंशावतंस कंसारि कृष्ण और बलभद्र अपने आत्मीयोंके साथ, पाण्डवोंका समादर करने के लिए, वहाँ आये और उन लोगोंको पृथ्वी पर बैठे हुए तथा उदास देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। राजा युधिष्ठिर ने उन लोगोंसे कुशल-प्रश्न करके, उन लोगोंको सत्कृत किया। पीछे अर्जुन के दिव्यास्त्र ग्रहण करनेके लिए जानेका समाचार सुनाकर, उन लोगोंको प्रमुदित किया। अनन्तर बलदेवजीने कृष्ण, सात्यकि और अन्यान्य यदुवंश-श्रेष्ठोंको सम्बोधन करके खेदके साथ कहा,—"हाय धर्म्म! इसके बाद कोई तुमको मङ्गलदायक समझकर, अब तुम्हारी सेवा नहीं करेगा। तुम्हारी अपेक्षा अधर्म्मको कल्याणदायक समझेगा। जिन्होंने आजन्म तुम्हारी सेवा करके, इस पृथ्वीपर धर्म्मराजकी उपाधि पायी है; क्या सुख के समय, क्या दुःखके समय, क्या भवनमें, क्या वनमें, जो अकपट हृदयसे तुम्हारी सेवा करते हैं, क्या वही जटाचीर धारण करके अशेष क्लेश से वनवास करके कालक्षेप करते हैं! और जिस दुरात्मा ने रात-दिन पाप करके अपने भाइयोंको प्रतारित किया है, वही विशाल राज्यका अद्वितीय अधीश्वर हो, सुखसे समय व्यतीत करता है! हा वसन्धरे! अब तक तू दुराचारके भार से रसातलको नहीं चली गयी, यही आश्चर्य है!"

सात्यकिने कहा,—"हलायुध! यह परितापका समय नहीं है। जो वीर पुरुष होते हैं, वे खेद और अश्रुवर्षण करके

बान्धवकी दुःखमें दुःख नहीं प्रकाश करते; किन्तु पौरुष दिखाकर प्रियजनका अप्रिय विनष्ट करते हैं। परशुराम जिस प्रकार परशुद्वारा परिचित हैं, उसी प्रकार आप भी हलायुध नामसे विख्यात हैं। परशुरामने जिस प्रकार क्षत्रिय-कुलको निर्मूल करके, अपने पितृगण को परितृप्त किया था; आप भी उसी प्रकार शत्रु-दमन करके अपने फुफेरे भाइयों का उपकार कीजिए। युधिष्ठिरके कुछ न कहने पर भी, उनकी सहायता हम लोगोंको अवश्य करनी चाहिये। बिना कहे ही वायु अग्नि की सहायता करता है; पलकें अपने-आप आँखोंकी विपद्से रक्षा करती हैं। यादव पाण्डवोंके सहायक और सुहृद हैं, इस बातका ख़याल करके हम लोगोंको अवश्य शस्त्र धारण करने पड़ेंगे। यादवोंकी सेना अस्त्र-शस्त्र लेकर दुर्योधनकी राजधानीको घेरले, हम लोगोंकी यही यात्रा युद्धयात्रा हो। प्राचीन वीराभिमानी भीष्म और द्रोण ने जब पाण्डव-वनवासका अनुमोदन किया है, और दुर्योधनकी हाँ में हाँ मिलायी है, तब वे वृद्ध और ब्राह्मण होनेके कारण दयाके पात्र नहीं हैं। अमोघ सुदर्शन और अव्यर्थ हला-युध, यह दोनोंही आप लोगोंके शरीर के भूषण होकर विश्राम करें। मेरी शराग्नि कौरव-वनको दहन करेगी, आशीविष-सदृश विषम शरसमूह कर्णका शरीर दंशन करेगा। शठशिरो-मणि शकुनि मेरे आनतगर्व शिलीमुख—बाणों—से विद्ध होकर, समर-शय्यापर दीर्घनिद्रा को प्राप्त हो। अधिक क्या कहूँ?

उस समय शत्रु मुझे वेगमें प्रलयकालीन अनिल, तेजमें युगक्षय-कालीन अनल, और शरवर्षामें पुष्कर समझेंगे। आप लोग मेरे रण-नैपुण्यको देखकर अविरत धन्यवाद प्रदान करेंगे। पाण्डवोंने द्यूत-सभामें जो प्रतिज्ञायें की हैं, वे उन्हें पूर्ण न कर सकेंगे, इसलिये वे मेरे ऊपर असन्तुष्ट न हो सकेंगे। मैं भुवन-विजयी अर्जुनका शिष्य हूँ; शिष्य और भृत्य-द्वारा निष्पादित कार्य्य प्रभु-सम्पादित ही समझा जाता है, यह बात शास्त्र और व्यवहारके विरुद्ध नहीं है। अतएव मेरे द्वारा किये हुए कार्य्य पाण्डवोंके द्वारा ही किये हुए समझे जायँगे। धर्म्मराज तो धर्म्म-प्रिय हैं, उनके भाई भी उनके मतानुयायी हैं। जबतक वे नियम-धर्म्म पालन करें, तबतक अर्जुनका पुत्र अभिमन्यु पैतृक राज्यका शासन करे। ऐसा करनेहीसे सुहृद्का प्रिय और हमलोगोंका यश होगा।"

कृष्णने कहा,—"सात्यके! तुमने जो प्रस्ताव किया है, वह यद्यपि वीरजनोचित और सुहृद्के उपयुक्त कर्म है; किन्तु राजा युधिष्ठिर औरके द्वारा जीते हुए राज्यका भोग करना नहीं चाहते। सिंह कभी दूसरेका उच्छिष्ट मांस नहीं खाता। उसके लिये ऐसा काम बड़े कलङ्कका है। भीम और अर्जुन भी ऐसा नहीं चाहते। यदि पाण्डवोंके मनमें राज्यकी बलवती लालसा होती, तो बातकी बातमें अब तक उन्होंने उसे ले लिया होता।" युधिष्ठिरने कहा,—"महारथ सात्यके! तुमने जो मुँहसे कहा है, उसे कार्य्य द्वारा भी

करके दिखा सकते हो, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ; किन्तु मैं एकमात्र सत्यका अवलम्बन करके चलता हूँ । सत्य-पालनकी अपेक्षा राज्य-पालन मुझे अभिलषित नहीं है । कृष्ण मेरे हृदयकी बात भली भाँति जानते हैं । मुझे भी उनका मतलब खूब मालूम है । वे जिस समय विक्रम दिखाना उचित समझेंगे, उस समय आप सब लोग मेरी भलाई कीजियेगा । अब मैं तीर्थोंमें घूम-घूम कर प्रतिज्ञात समय बिताऊँगा । कार्य्यके समय, मैं फिर आप लोगोंका दर्शन पाकर सुखी होऊँगा ।" युधिष्ठिरके इस प्रकार कहने पर, यादवोंने उन्हें अभिवादन किया । उन्होंने भी उन्हें प्रत्य-भिनन्दन किया । यादव द्वारावतीकी ओर चले गये और पाण्ड-वोंने तीर्थ-दर्शनके लिये यात्रा की ।

राजा युधिष्ठिर नाना तीर्थ परिभ्रमण करनेके बाद, अन्तमें हरिद्वार पहुँचे । हरिद्वार अत्यन्त पवित्र रमणीय स्थान है । यहाँसे सभी नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा, जल-प्रवाह-रूपसे, हिमालय का पाषाणमय कलेवर विदीर्ण कर, कहीं संकीर्ण, कहीं वि-स्तीर्ण और कहीं कुटिल होकर नीचेकी ओर प्रवाहित होती है । उसके तटपर ऋषियोंके आश्रम, मुनियोंकी पर्णशालायें और वैखानसोंकी झोंपड़ियाँ, घनपल्लवित बहु-कुसुमित पादप-समूह द्वारा सुशोभित हो रही हैं । श्रुति-सुख निनादी पुंस्कोकिल प्रभृति सुकण्ठ विहङ्गम, वृक्ष-शाखाओं पर बैठकर, मधुर स्वरसे कलरव करते हैं । मधुलुब्ध मधुकर-निकर, गुन्-गुन् स्वरसे

राजा युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव और महारानी द्रौपदी—पाँचों जने हरिद्वार में थक कर विश्रामार्थ गंगातट की हरी हरी घास पर बैठे हैं। (पृ० ११८)

NARSINGH PRESS CALCUTTA.

झङ्कार करके एक फूलसे दूसरे फूलोंपर उड़ते फिरते हैं। भागीरथी वक्रगामिनी होकर वृक्षोंके आलवालका काम कर रही है। इस स्थान पर बिना फलका कोई वृक्ष नहीं है। पेड़ों पर जितने फल हैं, सभी सुस्वादु हैं। ऐसे स्वादु नहीं, कि जिनके खानेसे मन ही तृप्त न हो; आश्रमके निकट की भूमि हरी-हरी घासोंसे परिपूर्ण है। उसपर सभी मृग-शावक अशङ्कित चित्तसे नव-दूर्वाङ्कुर भक्षण कर रहे हैं। राजा युधिष्ठिर अपने भ्राताओंके साथ उस मनोरम स्थान पर परिभ्रमण करके थकावटसे रहित हो गये; और बार-बार उस प्रदेशका सौन्दर्य्य देखने लगे। बार-बार देखने पर भी उन्हें तृप्ति न हुई। रम्यवस्तुमें यही बड़ा गुण है कि, ज्यों-ज्यों देखिये त्यों-त्यों बारबार देखने को मन चलता है। लगातार देखने पर भी तृप्ति नहीं होती।

इसके बाद युधिष्ठिर लोमश और धौम्यको आगे करके, अपने भाइयोंके साथ आश्रममें पहुँचे और वहाँ जाकर देखा, कि कहीं होमाग्नि प्रधमित हो रही है; कहीं नीवार बलि पड़ी हुई है; कहीं समिध-कुश फैला हुआ है; कहीं ऋग्वेदी ब्राह्मण उदात्त-अनुदात्त स्वरित्स्वरका प्रभेद करके वेद-पाठ करते हैं; कहीं सामवेदी उच्चस्वर से सामगान करते हैं; किसी स्थान पर यजुर्वेदी हस्तभङ्गी द्वारा स्वर-भेद-पूर्वक यजुर्वेद अध्ययन कर रहे हैं; दूसरी जगह अथर्ववेदी मान्त्रिक कार्यके प्रयोगका अभ्यास करते हैं; स्थान-स्थान पर चतु-

वेदवेत्ता प्राचीन मीमांसक महर्षिगण, शिष्यमण्डलीसे परि-वृत्त हो, नाना शास्त्रोंकी मीमांसा कर रहे हैं । कहीं न्याय-शास्त्रका तर्क हो रहा है ; कहीं धर्म्मशास्त्रकी मीमांसा हो रही है ; स्थान-स्थान पर शब्द-शास्त्र, वार्त्ताशास्त्र, दण्डनीति, निरुक्त, वेद, वेदाङ्ग, छन्द, पुराण, आत्मतत्व, मनस्तत्व प्रभृति नाना शास्त्रोंकी आलोचनाएँ हो रही हैं । राजा युधिष्ठिर इन सब बातोंको देख-सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए । अनन्तर कुल-पति ऋषियोंको प्रणाम किया । उन्होंने भी राजाको आशी-र्वाद दे यथोचित सत्कार किया । राजा युधिष्ठिर मुनियोंकी सम्मतिसे, भाइयोंके साथ, कतिपय दिवस उसी पुण्याश्रममें आतिथ्य ग्रहण करने को ठहर गये ।

एक दिन लोमशने युधिष्ठिरसे कहा,—"धर्म्मराज ! यहाँसे उत्तर की ओर चलकर महातीर्थ बदरिकाश्रममें जाना होगा । उसका मार्ग अत्यन्त दुर्गम, दुरारोह और हिमशिला-निबद्ध है । उसके एक पार्श्वमें सुगभीर सुदुष्प्रेक्ष्य भगीरथ गड्ढा है; दूसरी ओर दीवारके समान आकाशसे बात करता हुआ बन्धुर शिलोच्चय है । अधिकांश स्थान अन्धकाराच्छन्न और नितान्त सङ्कीर्ण हैं ; अतएव बड़ी सावधानी से चलना पड़ेगा ।

राजा युधिष्ठिर लोमशके उपदेशानुसार, सतर्क रूपसे साव-धान होकर, साथियोंके साथ हिमाचलको लक्ष्यकरके उत्तर-मुख चले। किसी स्थान पर लतारचित सेतु द्वारा अतलस्पर्श देवखात —झील—पार की; और कहीं वृक्षका मूलमात्र धारण कर, उन्नत

स्थान पर चढ़े ; किसी स्थान पर भीमसेन द्वारा शिलाराशि अपसारित कराकर, दुर्गम पथको सुगम कर लिया; इस प्रकार बड़े कष्टसे हिमालयकी उपत्यकामें पहुँच गये। अनन्तर समतल भूमिपर मार्ग परित्यण कर, शिला-खण्डसे विरचित सोपानोंके द्वारा, पर्वतकी अधित्यका पर चढ़ गये। साथियों को चलनेमें असमर्थ समझकर, विश्राम के लिये, फल-कुसुम-शोभित निर्झर-निनादित किसी नगोत्सङ्ग का आश्रय करके रह गये।

दूसरे दिन महर्षि लोमशने कहा,—"धर्म्मराज! हम लोग हिमालयके उशीरवीज मैनाक प्रभृति शृङ्गोंको लाँघ चुके हैं। सामनेही पाषाणमय जिस उन्नत स्थान को आप देख रहे हैं उसका नाम कालशैल है; उस पर देवता क्रीड़ा किया करते हैं; इसलिये उसको आक्रीड़ पर्वत भी कहते हैं। यह देखिये! इस स्थानपर भगवती भागीरथी सप्तधा—सात धाराओंमें विभक्त—होकर, पर्वत-राजके सतलड़े मुक्ताहारके समान शोभित हो रही हैं। इस स्थानके निकट ही जिस तुषारमण्डित शुभ्रवर्ण अत्युन्नत पर्वत को आप देख रहे हैं, उसका नाम धवलगिरि है। वहाँ यक्षेश्वर कुवेर रहते हैं। कुवेरकी राजधानीका नाम अलका है। त्रिभुवनमें उसके समान समृद्धिशालिनी दूसरी पुरी नहीं है। यक्षेश्वर समधिक धनशाली हैं। वे धनके लिये सर्वत्र धनेश्वर नामसे विख्यात हैं। पुरवासी सभी धनवान हैं। उनलोगों के धनकी संख्यानुसार, उनके बाहर के फाटकों पर

रत्न-निर्म्मित शङ्ख और पद्म उज्ज्वल शोभा पा रहे हैं। कैलास पर्वत दुर्गम और दुरारोह है। इस पर भी तुर्रा यह कि, भीषण यक्ष और राक्षस उसका रक्षणावेक्षण करते हैं। अबतक कोई मनुष्य उस भयङ्कर स्थान पर नहीं पहुंच सका था। हम लोग कैलास पर्वतको उल्लङ्घन करके, मन्दर गिरि पर जायेंगे। इस समय जितना मार्ग पर्य्यटन करना होगा, उतने पर शैल-शङ्कट विद्यमान् है। अतएव सब लोगोंको बड़ी शूरताके साथ वहां चलना चाहिये। भीमसेन यूथपति होकर आगे-आगे चलें। आप लोग भी अस्त्र-शस्त्र लेकर भीमसेनकी बगलमें रहियेगा। मेरे तपोबल और ब्राह्मणोंके वेद-मन्त्रोंके प्रभावसे तुम्हारा पथ मङ्गलदायक होगा।

राजा युधिष्ठिरने लोमशकी बात सुन कर कहा,—"भीम! महर्षिने कैलास पर्वतके विषयमें जो कहा है, उसके सुनने से मेरी यह राय है कि इस दुर्गम शैल-शङ्कटमें सबका जाना उचित नहीं है। तुम सुकुमारी द्रौपदी तथा अन्यान्य साथियोंको लेकर, पुरोवर्त्ती पुलिन्दाधिपति सुबाहुके राज्यमें रह जाओ, या मेरे आनेकी प्रतीक्षामें सम्मुखवर्त्ती गङ्गाद्वार पर ठहरो। मैं नकुलके साथ महर्षिकी अनुकम्पासे छः योजन ऊंचे कैलास पर्वतके शिखर पर जाऊंगा।"

भीमने कहा,—"नरनाथ! सुकुमारी राजकुमारी, पथ-पर्य्यटनसे नितान्त निपीड़ित होनेपर भी, गमनसे विरत नहीं होंगी। वे अर्जुनको देखनेके लिये एकान्त समुत्सुक हो रही

हैं। आप अर्जुनके विरहमें व्याकुल होगये हैं। हमलोगोंके विरहसे और भी अधिक अधीर होजाइयेगा। ऐसी अवस्थामें, मैं कभी आपका साथ नहीं छोड़ सकता। मैंने मन-ही-मन कल्पना की है, कि भीषण कानन, उत्तुङ्ग शैल शृङ्ग, गभीर गिरि-गह्वर-प्रभृति दुर्गम स्थानों पर जो-जो जानेमें असमर्थ होंगे, मैं उनको वहन करके वहाँ ले जाऊँगा। इसके लिये आप चिन्तित मत हूजिये।" इस प्रकार बात-चीत करते-करते वे सुबाहु के राज्यमें पहुँच गये; और वहाँके राजासे सत्कृत होकर, दूसरे दिन प्रातःकाल उस स्थानसे आगे बढ़े।

कुछ दूर तक जानेके बाद लोमशने कहा,—"पाण्डवगण! हम अनेक पर्वत, अनेक गण्डशैल, अनेक नद-नदी लाँघ चुके हैं; कैलासके शिखर तक पहुँच चुके हैं। इस समय उत्तरवर्त्ती रास्तेसे मन्दरगिरि पर जाना होगा। यह गिरि देवताओं और ऋषियोंका आवास-स्थान है। अतएव नियमानुसार शौचाचार-परायण होकर वहाँ चलो। यह जो पुण्यसलिला तरङ्गिनीको प्रवाहित होते हुए देखते हो, इसका नाम गङ्गा है। बदरिकाश्रम इसका उत्पत्ति-स्थान है। यह जो गोमुखाकृति गङ्गाद्वार देख रहे हो, इसी स्थानसे भगवती गङ्गा निकल कर, स्वर्ग, मर्त्य और पातालको पवित्र करनेके लिये जाती हैं। इनका जो ऊर्द्ध-स्रोत देखते हो, उसका नाम मन्दाकिनी है। उसको सुरधुनी भी कहते हैं। उनके जिस प्रवाहको, हिमालयके अभ्यन्तर भागको विदीर्ण करके, भूगर्भमें

प्रविष्ट होते देखते हो, उसका नाम भोगवती है; और जो स्रोत हिमाद्रिका कटक निर्भेदकर भूपृष्ठपर पतित होता है, उसका नाम भागीरथी है। बहुत दिन पहले, गङ्गाधरने इस धाराको अपने शिरपर धारण करके पृथ्वीको निरापद रक्खा था। तुम सभी लोग भक्तिके साथ आकाश-गामिनी मन्दाकिनीको अभिवादन करके चलो।"

पाण्डवगण, लोमशके उपदेशानुसार, मन्दाकिनीको प्रणाम और गन्धमादनको लक्ष्य करके शीघ्रतासे चले। धीरे-धीरे गन्धमादन उनके समीप आ गया। उसके धातुरागरञ्जित सभी शृङ्ग सन्ध्या-कालीन जलद-जालके समान दीखने लगे। नील वर्ण शिलोच्चय तमोराशिके समान मालूम होने लगा। पाण्डवोंने स्वतःच्युत उपल-खण्ड-रचित सोपान-परम्परा द्वारा कटकदेश अतिक्रमण कर, महाशैलके शिखर पर आरोहण किया और देखा, कि कहीं चमरियाँ चामर-सञ्चालन-पूर्वक इतस्ततः दौड़ रही हैं; कहीं कृष्णसार —काले हिरन—यूथपति होकर सारङ्गों—हिरनों—का रक्षणाविक्षण कर रहे हैं; कहीं कन्दराओंमें केशरी सुखसे सोरहे हैं और यात्रियोंके कोलाहल से केवल एक बार चक्षुउन्मीलन करके निर्भय हो उनलोगोंको देखते हैं। भल्लूकगण अवलंबित वृक्षोंको परित्याग कर दूसरे वृक्षोंपर चढ़ रहे हैं। हस्ती हस्तिनियोंके साथ कुञ्जमें प्रवेश कर रहे हैं। गजपति क्रीड़ा परित्याग कर लताओं की ओटमें छिप रहा है। देवखात—झीलोंमें हंस, कारण्डव, चातक

क्रौञ्च प्रभृति जल-विहङ्गम पक्षविधूननपूर्व्वक कमल-वनमें पलायन कर रहे हैं। शुक पुंस्कोकिल प्रभृति पक्षी कलरव करके, निविड़ पत्रान्तरालमें विलीन होरहे हैं। कहीं जल निर्झर झर्-झर शब्दसे पतित होता है। कहीं-कहीं गिरितरङ्गिणी महा-वेगसे नीचे की ओर प्रवाहित होती है। पार्श्वमें मेघावली विलीन होगयी है। देखनेसे मालूम होता है, मानो शैलराज ने अपना पक्ष विस्तार किया है।

पाण्डव शैल की विचित्र शोभा देखते हुए, धीरे-धीरे आरो-हण कर रहे थे; इसलिये उनका अधिरोहण-क्लेश कुछ हलका होगया था। पीछे उनलोगोंने गन्धमादनकी काननमें प्रवेश किया। यह कानन फलभारावनत आम्र, जामुन, नारंगी, कदली, कपित्थ प्रभृति फलवान वृक्षों से परिपूर्ण था। पाण्डव परिश्रान्त और भूख-प्यास से कातर होगये थे; इसलिये वे काननके समीप जला-शयके तट पर एक रमणीय स्थान देखकर वहीं ठहर गये। दुःखका समय उपस्थित होने पर किसी प्रकार सुख नहीं मिलता। यद्यपि पाण्डवोंने परिश्रान्त हो, विश्राम-सुखको अभिलाषासे मनोरम स्थान मनोनीत किया, किन्तु सहसा प्रबल झटिकाने उपस्थित हो उनलोगोंको व्यस्त कर दिया। पहले प्रभञ्जन के सन्-सन् शब्दने श्रवणेन्द्रियको बधिर कर दिया; उसके थोड़ी देर बाद गिरिरेणु और धूलिराशिने उड़कर आच्छन्न कर लिया। निविड़ नीलवर्ण नीरदजालने नभोमण्डलको आच्छन्न कर, सूर्य्यमण्डलको आवृत कर लिया। दिवाकर-भीत

अञ्जन-समान अन्धकार-पटलने समुत्थित हो, जन-नयन का निर्माण निष्फल कर, समुदय पदार्थों को एक वर्ण कर दिया। उस समय पाण्डवोंमें कोई किसीको पहचान न सका। कौन किस ओर गया, इसका भी निश्चय नहीं रहा। पाषाण-चूर्णकी वर्षा करने वाले पवनके आघातोंसे बारंबार आहत हो, कोई प्रकाण्ड महीरुह—वृक्ष—का स्कन्ध, कोई उन्नत वल्मीक, कोई नदीके पुलिन का आश्रय लेकर छिप गये और बीच-बीचमें हवाके झोंकोंसे उखड़े हुए वृक्षों का भीषण शब्द और पर्वतसे वायु-विक्षिप्त उपलखण्डकी घ्रःध्वनि सुनने लगे।

वायुके वेगके उपशमित होनेपर, पहले शिलावृष्टि हुई। उसके बाद ही मूसलाधार वृष्टि होने लगी। कीट-तृण-रजो-मिश्रित कलुषित पाण्डुवर्ण का जलस्रोत बहने लगा। भेक-कुल कोलाहलसे आनन्द करने लगे। अनन्तर क्रमशः वारि-धारा कम होने लगी। मेघ तिरोहित और दिवाकर भली-भाँति प्रकाशित होगये। पाण्डव अपने साथियोंके साथ मिल कर फिर आगे चलनेके लिये तैयार हुए। इन लोगोंके कुछ दूर जानेके बाद, द्रुपददुहिता पहलेही तूफान और जल-संपात से कातर होगई थीं, वे इस समय पथ-पर्यटनमें असमर्थ और अवशेन्द्रिय हो, दोनों हाथों द्वारा उरुयुगल धारण-पूर्वक, फिसलने पत्थरों पर गिर कर बेहोश हो गयीं।

यात्री हाहाकार-मूलक महाकोलाहल करने लगे। राजा युधिष्ठिर उसी समय उपस्थित हो, द्रौपदी को गोदमें लेकर

अशेष प्रकारसे विलाप करने लगे। नकुल-सहदेव जलसेक करने लगे, कोई वसन द्वारा मृदुभावसे हवा करने लगे। भीमसेन, मैं द्रौपदी को वहन करके क्यों नहीं ले चला, मेरा बाहुबल द्रौपदी के काम न आया, कहकर यथेष्ट परिताप करने लगे। इसी समय पाण्डव-प्रणयिनीने सुप्तो-त्थिता के समान निःश्वास निर्गत और नेत्रद्वय उन्मीलन करके देखा। पाण्डवोंके उदास मुख प्रसन्न होगये। राजा युधिष्ठिर को अपनी ओर देखते ही भीमने सङ्कुचित भावसे कहा,—"नरनाथ! मैं महर्षि के उपदेशानुसार अग्रसर हो सबको निर्भय ले जारहा था; द्रौपदी का मुझे भी खयाल नहीं था। इस समय हिडि-म्बा-गर्भसम्भूत अपने पुत्र घटोत्कच को स्मरण करता हूँ। वह अपने अनुचरोंके साथ यहाँ आकर सबको वहन करके ले चलेगा। यह कहकर भीमने घटोत्कच को स्मरण किया।

कामचारी निशाचरने स्मरण करतेही अपने अनुचरोंके साथ आकर कहा,—"पिताजी! दास उपस्थित है, आज्ञा दीजिये, क्या काम करना होगा?" भीमने वत्सलतावश पुत्रका मुख चुम्बन और मस्तक घ्राण करके कहा,—"वत्स घटोत्कच! हिमाच्छन्न, अत्युन्नत, कन्दरभूयिष्ठ, पार्व्वतीय पथका पर्यटन करनेमें तुम्हारी माता द्रुपद-राज-दुहिता असमर्थ हैं। जिस प्रकार सुखासन नरयान पर गमन करनेमें इन्हें क्लेश न हो, उसी प्रकार आरा-मके साथ इन्हें चढ़ाकर बदरिकाश्रम लेचलो। तुम्हारे सभी अनु-चर बलवान् और तुम्हारे आज्ञावह हैं। वे और सभी लोगों को

ले चलें।" घटोत्कचने जो "आज्ञा" कहकर द्रौपदी को कन्धे पर चढ़ा लिया और सब लोगोंने भी राक्षसों के कन्धों पर आरोहण किया। हाथीवान् जिस प्रकार गजस्कन्ध पर बड़े सुखके साथ बैठकर जाते हैं, उसी प्रकार सभी बड़े आरामसे चले। केवल लोमश, तपस्याके प्रभावसे, भास्करके समान, उन सभी लोगोंके ऊपर होकर चले। कामरूपी राक्षस उत्तुङ्ग शैल-शृङ्ग अतिक्रम करनेके समय खेचरोंके समान चलते थे और गभीर गह्वर उत्तीर्ण होनेके समय जलौका की गति का अनुकरण करते थे। पाण्डव, राक्षसों की क्षिप्रगामिताके, अल्प समयमें बहु-दिन-गम्य बदरिकाश्रम में जा पहुँचे।

बदरिकाश्रम अत्यन्त पवित्र तीर्थ क्षेत्र है। यह प्रदेश हरी-हरी घास और हिमके संसर्गसे शीतल है। यह महर्षि और देवर्षियोंसे परिवृत रहता है। यह किन्नर, किम्पुरुष, गन्धर्व और विद्याधरोंका निवास-स्थान है। यहाँ बदरीतरु अत्यन्त विशाल और कण्टक-शून्य है। देखनेमें अत्यन्त रमणीय है। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ बहुत दूरतक फैली हुई हैं। उन पर नाना जातिके विचित्र पक्षधारी पक्षी नीड़ निर्म्माण करके शान्तिपूर्वक वास करते हैं। उसके सभी पल्लव एकान्त निविड़ और स्तर-स्तर सज्जित हैं। इससे उसके नीचे सदा स्निग्ध छाया या अनातप रहता है। उसके फल और फूल सब ऋतुओंमें समान और पूर्ण रहते हैं। फल अङ्गुष्ठ परिमित, सुस्वादु और अम्लमधुर रससे भरे हुए होते हैं।

घटोत्कच्च ने "जो आज्ञा" कह कर द्रौपदीको कन्धे पर चढ़ा लिया। (पृ० १७८)

NARSINGH PRESS CALCUTTA

पाण्डवोंने वहाँ नरनारायणाश्रित तमोगुणातीत दिव्य आश्रम देखा। अजिनधारी मोक्षार्थी ब्रह्मर्षियोंने अतिथि-सत्कारार्थ उनलोगोंको फल,मूल और सुस्वादु सुशीतल स्वच्छ सलिल-जल-प्रदान किया। वे अभिवादन-पूर्वक अतिथि-सत्कार ग्रहण करके प्रीत और परितृप्त हुए। इसके बाद उन्हीं ब्रह्म-परायण ऋषि-मुनियों को साथ लेकर, प्रसिद्ध शक्रसदन-प्रस्थमें उपस्थित हो, नरनारायण-स्थान का दर्शन किया। इसके बाद काञ्चन-शृङ्ग-शोभित मैनाक पर्वत पर, मनोहर विन्दु सरोवर अवलोकन किया। अनन्तर विशाल बदरी के निकट, मणि-मय सोपान-परम्परा से अवगाहनीय, तीरस्थित दिव्यकुसुमोंकी शोभासे सुषमावती भगवती गङ्गा नदी के तट पर, आश्रम निर्माण करके, धनञ्जयके साथ साक्षात्कार करनेकी अभिलाषासे रहनेलगे।

सर्वरी-सार्वभौमने पूर्व-दिशाको अभिक्षत कर अभ्युदय लाभ किया। कौमुदीमय, सितातपत्रसे उद्भासित हो, राज्येश्वरके समान विराजित हुए। उनके प्रभापुञ्जको सह्य न कर सकनेके कारण, अन्धकार निकटस्थ भूविवरमें पलायन करके छिपने लगा। नक्षत्रमण्डित अम्बरमण्डल उनके ऊपर मुक्ता-खचित चन्द्रातप होगया। दूरस्थ ग्रहगण भी, पराभूत भूपतियोंके समान, उनके प्रताप से धीरे-धीरे निस्तेज होने लगे। द्विजराजने वसुमतीको दिनकरके करसे पीड़ित जानकर, उसके ऊपर अमृतमय कर का विस्तार किया और वदान्यता

दिखानेके लिये, सुधा देकर चकोरकी क्षुधा दूर की। विभावरी ने प्रोषितभर्तृकाके समान तमोमय मलिन वसन परित्याग-कर, कौमुदीमय धवल वेश धारण कर, अपने प्रभुका कर ग्रहण किया। तारकाओंने दक्षिण नायकके समान तारापतिको चारों-ओरसे घेर लिया। कुमुदिनी निद्रिता थी, किन्तु इस समय प्रिय वल्लभके कर-स्पर्शसे जागरिता हो, हास्य-उपायन अर्पण किया। अनन्तर भ्रमर-झङ्कारके बहाने उपागत दयितसे स्वागत-प्रश्न किया। चन्द्रालोकने शिशिर-स्निग्ध-तरुपल्लवों पर पतित हो, हरि-न्मणिकी शोभा धारण की; और छायादार पादपके नीचे प्रविष्ट हो, विडाल-चक्षुका भ्रम उत्पन्न किया। वह आलोक धवल शिला-तलसे मिश्रित हो, दुग्ध-धाराके समान मालूम होने लगा और जलमय स्थानको स्थलमय सा दिखाने लगा। चन्द्रालोकमें सभी सुखपूर्वक बैठे थे, कि इसी समय ईशान, कोनोत्थित-नाति-मन्थरगामी सुगन्ध पवनने आकर सबको आमोदित कर दिया। उसके साथ-ही-साथ भ्रमर-मालानुविद्ध, दिव्य परिमलपूर्ण, प्रफुल्ल सौगन्धिक कमलपुष्प, मानो पादवन्दनाके लिये हो, द्रौ-पदीके चरणों पर आकर गिर पड़ा। द्रौपदीने संभ्रमके साथ उस कह्लार-कुसुमको उठा लिया; और उसके गन्ध तथा सौन्दर्य्य से उद्भ्रान्तमना होकर कहा,—"भीमसेन! यह कैसा उपादेय सौगन्धिक है! यह बहुत दूरसे आया है, इसलिये म्लान है; किन्तु इसकी सुगन्धि में कुछ भी न्यूनता नहीं मालूम होती। नहीं कह सकती, कि इसके अम्लान अनाघ्रात कुसुममें कैसी

सुगन्धि और रमणीयता होगी! यदि तुम एक स्फुटोन्मुख पुष्प मूल के साथ ला सको, तो उसे काम्यक वनमें रोप कर, काम्यक वन का दिव्य कुसुमाभाव मैं दूर कर दूँ।" यह कह-कर और पुष्पको लेकर युधिष्ठिरके निकट चली गयी।

भीमसेन, प्रणयिनी का प्रियानुष्ठान अवश्य करना चाहिये, यह सोचकर, गन्ध आघ्राण करते-करते ईशान कोणकी ओर चले। गमन-समय प्रस्रवण-वारिकण वितरण करनेवाले, कुसुम-सौरभ-विस्तारी, मन्द-मन्द सञ्चारी, गन्धमादन मारुतके सुखस्पर्शसे अपने कार्य में दैव की अनुकूलता विचार कर, प्रफुल्ल-चित्तसे बड़ी शीघ्रता-पूर्वक आगे बढ़ने लगे। उनके वेग के बल से पार्श्वस्थ महीरुह निपतित, भीषण मूर्त्ति देख-कर गिरिगज विचलित, चरण-सम्पात से केशरी वित्रासित, वल्लीवितानके हटानेसे शार्दूल विमर्दित होने लगे। उनका गम्भीर गर्जन सुनकर श्वापदगण विट-मूत्र परित्याग-पूर्वक, विकटरव से भयङ्कर शब्द करके जंगल छोड़ने लगे। जो सभी दुर्दान्त मातङ्ग उग्रतावश या करेणुओं की उत्तेजना से उनकी ओर दौड़ते थे, वे उन्हीं गजों के आघातसे अन्यान्य गजों को चूर्ण-विचूर्ण करने लगे। जो सिंह पशुराज के अभिमान से उन पर आक्रमण करते थे, उनको वे वज्रमुष्टिके प्रहार से दाँत-तोड़ कर विनीत कर देते थे। औद्धत्यवश जो गेंड़े उनके निकट आते थे, वे खड्ग निकाल कर उनके मस्तक का भार हलका कर देते थे; और तरक्षु—भेड़िये प्रभृति जितने हिंस्रजन्तु,

हिंसा-प्रेरित होकर उनकी ओर आते थे, वे चपेटाघातसे एक ही वार में उनको स्वर्गलोक का अतिथि बना देते थे। इस प्रकार भीम-पराक्रम भीमसेन प्रभञ्जनके समान महारण्यको छिन्न-भिन्न करते चले जाते थे। अन्तमें गन्धमादनके दूसरे शिखर पर, एक योजन विस्तीर्ण कदली-वनमें पहुँचे। वहाँ सुरम्य सरोवरमें अवगाहन और जल-क्रीड़ा समाप्त करके, कदली-फल भक्षण और पद्म-पराग सुगन्ध सरसी-सलिल पान कर, थोड़ी देर विश्राम किया।

कदली-वनमें स्वर्ग जानेके लिये एक गुप्त द्वार था। भीमसेन उस द्वार पर जाकर अभिशप्त हो जायँगे, यह सोचकर पवन-नन्दन हनुमान, भाई की भलाई के लिये, उस द्वार को रोक करके बैठ गये और भीमसे भेंट करनेकी इच्छासे, शक्रध्वज-तुल्य लांगूल द्वारा पर्वत-पृष्ठपर वारम्वार आघात करने लगे। महाबली महादेवांश हनूमान के लांगूलाघात से पर्व्वत कम्पित होने लगा; लांगूलास्फोटन-शब्द गुहानिवद्ध हो, गभीर प्रतिध्वनि करने लगा।

भीमसेन ने वज्र के समान कठोर शब्द सुन कर, शब्द का कारण जाननेके लिये, इतस्ततः अनुसन्धान कर के देखा कि, एक शिलातल पर पिङ्गलवर्ण की दाढ़ी वाला एक बन्दर जाने का रास्ता रोक कर सोया हुआ है। भीम ने देखते ही अशनि-निर्घोष-सदृश घोरतर सिंहनाद किया। हनूमानने घोररव सुनकर चक्षुरुन्मीलन-पूर्व्वक कहा,—"हे भद्र! मैं एक तो जराजीर्ण हूँ, इसके सिवा व्याधि-पीड़ित हूँ; मैं युद्ध नहीं करना चाहता; तब

तुम क्यों बद्धपरिकर हो सिंहनाद कर रहे हो? यहीं से लौट जाओ। मनुष्य जहाँ तक आते हैं, उससे भी अधिक दूर तुम आ गये। अब आगे बढ़ोगे, तो मृत्यु-कुण्ड में पतित होओगे।"

भीमसेन ने कहा,—"हे वानर! तुम कौन हो? किस लिये मुझे रोकते हो? मेरा रास्ता रोक कर तुम्हारे यहाँ बैठने का क्या कारण है?" हनूमान ने कहा,—"हे भद्र! इस कदली वन के उत्तर जिस पर्वतको देख रहे हो, वहाँ मनुष्य नहीं जाते। वह देवस्थान है; वहाँ तुम नहीं जा सकते, रास्ते ही में तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इसी लिये तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं तुम्हें नहीं जाने देना चाहता; और मैं वानर होऊँ, चाहे जो होऊँ, मेरी बातको तुम अपने हित की समझ कर यहाँसे लौट जाओ। और यदि मृत्यु के मुख में पड़ने हीकी इच्छा हो, तो मुझे लाँघ कर चले जाओ।" भीम ने कहा,—"हे वानर! मैं मृत्यु से नहीं डरता; परमात्मा सभी प्राणियों में रहते हैं, इस लिये तुम्हें मैं उल्लङ्घन नहीं करता; नहीं तो तुम्हारे साथ इस पर्वत को एक लम्फ में कूद कर चला जाता। हे वानर! मेरे भाई वानरराज हनूमान हैं; उन्होंने समुद्र को गोपद के समान लाँघा था। मैं उनका अनुज हूँ। क्या मैं एक वानर को लाँघना कठिन समझ सकता हूँ?"

हनूमान ने भीमकी बल-गर्व्वित बात सुन कर मन-ही-मन आह्लादित होकर कहा,—"हे भद्र! वृद्धावस्थाने मेरी शक्ति को बिल्कुल हरण कर लिया है। अब मुझ में चलने की भी सामर्थ्य

नहीं है; अतएव तुम्हीं मेरी पूँछ हटा कर चले जाओ।" भीम ने मन ही मन सोचा, वानर कितना मूर्ख है! मैं इस की पूँछ पकड़ कर खींचूँगा, तो यह सीधा यमालय पहुँच जायगा। मालूम होता है, कि अब इस की मृत्यु निकट है। "रे मर्कट! मैंने तुम्हारा लांगूल धारण किया, कि यमराजने भी उधर तुम्हारा प्राण हरण किया।" यह कहकर अवज्ञा प्रदर्शन-पूर्व्वक वामहस्तको कनिष्ठागुंलि द्वारा उसे पकड़ कर खींचा; किन्तु उसे ज़रा हिला भी न सके। अनन्तर पूरे हाथ से, फिर दोनों हाथों से धारण कर, अपनी शक्ति के अनुसार आकर्षण करने लगे; किन्तु किसी प्रकार उसको विचलित न कर सके। पीछे क्रुद्ध हो, लाल-लाल आँखें कर, विरक्त-वदन हो, भूतल पर वाम जानु प्रोथित किया, और दक्षिण पद तिर्यक् भाव से रखकर, बलवृद्धि-पूर्व्वक लाँगूल उखाड़ने के लिये पूर्ण यत्न किया; परन्तु कुछ भी न कर सके, बल्कि लाँगूल-भार से आक्रान्त हो गये। जब मालूम हो गया, कि लांगूलका उखाड़ना सामर्थ्य के बाहर है, तब लज्जित और पसीने-पसीने होकर अधोवदन करके खड़े हो गये। हनूमान के सम्मुख उपस्थित हो हाथ जोड़ कर कहा,—"कपिवर! जब मेरा बल आप के निकट कुण्ठित हो गया, तब मुझे मालूम होता है, कि आप कोई देवता हैं, और यह वानर का रूप धारण किया है। मैं ने अज्ञात में जो चपलता की है, उसको क्षमा कीजिये। मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। मैं आपका स्वरूप जानने

भीम ने हनुमान की पूँछ उखाड़ने के लिये खूब ज़ोर लगाया, परन्तु कुछ भी न कर सके। (पृ० १८४)

NARSINGH PRESS CALCUTTA.

के लिये अत्यन्त अभिलाषी हूँ। अनुग्रह कर; अपना स्वरूप व्यक्त कीजिये।"

हनूमान ने कहा,—"भाई! तुम जिस लिये यहाँ आये हो, उसे मैं ज्ञान-बल से जान गया हूँ। यदि मेरा परिचय जानने के लिये तुम्हें अत्यन्त कौतूहल है, तो सुनो; मैं ने अञ्जना के गर्भ से, प्राणियों के प्राण-स्वरूप पवन के औरस से जन्म ग्रहण किया है; मेरा नाम श्रीमान् हनूमान है। काल-क्रम से कपिराज सुग्रीवके साथ मेरा प्रेम हो गया। इसी समय सूर्य्यवंशावतंस महाविष्णु के पूर्ण अंश, राजा रामचन्द्र की पाणिग्रहीता जनक-दुहिता को लङ्काधिपति रावण ने हरण किया; रामचन्द्र सीता की खोज में घूम रहे थे, इसी समय सुग्रीव से उन की भेंट हो गयी; दोनों एकही दुःख से दुःखी थे। इसलिये उन दोनोंमें प्रेम हो गया। रामचन्द्रने सुग्रीव के बड़े भाई बालिको मार कर, अपहृत सुग्रीव-पत्नी तारा को वानर-राज्य सहित सुग्रीव के अर्पण कर दिया। मैंने राम-दूत होकर, लवणमय समुद्र उल्लङ्घन किया और लङ्कापुरी जलाकर सीता का वृत्तान्त रामचन्द्रसे आकर निवेदन किया। रामचन्द्र ने असंख्य कपिसैन्यके साथ समुद्रपर सेतु बाँधकर, उसके द्वारा लङ्कापुरी पर आक्रमण किया। कितने ही दिनों तक राम और रावणमें खूब घमासान युद्ध हुआ। इस युद्धमें दशानन अपने वंश के साथ मारा गया। रामचन्द्रने शरणागत रावण-भ्राता विभीषणको लङ्का का राज्य देकर, भगवती सीता का उद्धार

किया। मैंने लङ्का-युद्धमें भगवान् रामचन्द्र की बहुत सहायता की थी; इसलिये मुझपर प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे यह वर दिया 'जबतक रामचरित जगतीतलमें विद्यमान रहेगा, तबतक तुम जीवित रहोगे।' मैं रामचन्द्रके वर से अबतक जीवित हूँ, और अभी कबतक जीवित रहूँगा, इसका कोई निश्चय नहीं। भगवती सीतादेवी की कृपासे यहाँ अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ मुझे मिल जाते हैं, उन्हें ही मैं खाया करता हूँ। बीच-बीचमें अप्सराएँ आकर, रामचरित-गाथा द्वारा मुझे आह्लादित करती हैं। मैं इसी तरह सुखमें समय व्यतीत करता हूँ। जहाँ मनुष्यों को नहीं जाना चाहिये, वहाँ तुम जाओगे, तो शाप-ग्रस्त हो जाओगे: इसी आशङ्कासे तुम्हारा रास्ता रोक-कर मैं यहाँ बैठा था। तुम जिस लिये यहां आये हो, वह तालाब सामनेही दीखता है।"

भीमसेनने हनूमान का परिचय पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा,—"पूज्याग्रज! मैं आज आपका दर्शन पाकर कृतार्थ होगया। आज निराश्रय पाण्डव आश्रयवान् होगये। शत्रुओंने छल द्वारा हमलोगों को निर्वासित किया है। आप उनलोगोंके पराजित करनेमें हमारी सहायता कीजियेगा, यही प्रार्थना है।" हनूमानने कहा,—"वत्स! मैंने लङ्का-समरके बाद से हिंसा-वृत्ति छोड़ दी है। सौभ्रात्रवश मैं तुम्हारा इतना उपकार करूँगा, कि जब तुम शत्रुओं को मारनेके समय सिंहनाद करोगे, उस समय मैं हुङ्कार-शब्दमें तम्हारा योग देकर, तुम्हारा

सिंहनाद घोरतर कर दूँगा; और कपिध्वज की ध्वजा पर आविर्भूत हो, इस प्रकार चीत्कार करूँगा, कि तुमलोगों के शत्रु उसे सुनतेही अभिभूत हो जायँगे। उस सुअवसर में, तुम उनलोगोंको थोड़े परिश्रमसे धराशायी कर सकोगे। इस प्रकार सम्भाषण करके, सौगन्धिक वन का मार्ग दिखा कर, हनूमान वहीं अन्तर्धान हो गये।

आठवाँ परिच्छेद।
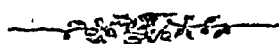
भीमसेन और राक्षसों का युद्ध।
अर्जुन का स्वर्ग से आना और सब को स्वर्गका वृत्तान्त सुनाना।

भीमसेन, हनूमान का लोकोत्तर कार्य और रामचन्द्र के विचित्र चरित्र पर मन-ही-मन आन्दोलन करते हुए, कुवेर के सरसी-तीर पर उपस्थित हुए। वहाँ अजिन-चर्म्म और अस्त्र-शस्त्र रखकर, सरोवरमें अवगाहन तथा जलपान कर परितृप्त हुए। अनन्तर; अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर गन्ध आघ्राण करते हुए सौगन्धिक-काननके निकट पहुंच गये। कुवेर-नियुक्त शत सहस्र राक्षस इस काननके रक्षक थे। उन्होंने भीमको आये हुए देखकर कहा,—"हे वीर पुरुष! तुम कौन हो? किस लिये यहाँ आये हो?" भीमने कहा,—"मेरा नाम भीमसेन है। मैं राजा युधिष्ठिर का अनुज हूँ। द्यूत-सत्य का पालन करनेके लिये भाइयोंके साथ मैं बदरिकाश्रममें आया हूँ। राजमहिषी द्रुपदनन्दिनीने सौगन्धिक कुसुम पर्य्याप्त परिमाणसे लेने की इच्छा प्रकट की है। मैं उनकी इच्छाके अनुसार पुष्प लेनेके लिये यहाँ आया हूँ।"

रक्षकोंने कहा,—"भीमसेन! यक्षेश्वर कुबेर का यह सरोवर है। सौगन्धिक कुसुम उन्हीं की सम्पत्ति है। यदि आपको उसकी बड़ी आवश्यकता हो, तो राज-राजेश्वरसे प्रार्थना करके ले लीजिये। बिना अनुमतिके आप उसे नहीं ले सकते हैं।" भीमने कहा,—"सौगन्धिककी मुझे बड़ी आवश्यकता है, उसे मैं अवश्य लूँगा। मैंने क्षत्रिय-कुलमें जन्म-ग्रहण किया है। क्षत्रिय प्राण त्यागना सहज समझते हैं; किन्तु याच्ञा-दैन्य किसी प्रकार स्वीकार नहीं करते। विशेषतः, यह सरोवर कैलासके अन्तर्देशमें है। कुबेरके अधिकारमें नहीं है इसपर उनका जैसा अधिकार है, वैसाही अधिकार हमलोगों का भी है; तो फिर किसलिये मैं उनसे प्रार्थना करूँ?" यह कहकर भीमसेन सौगन्धिक लेनेके लिये दौड़े।

रक्षक भीमकी गति रोकनेके लिये चारोंओरसे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे। भीमने उन्हें बारम्बार मना किया। जब देखा, कि वे यों माननेवाले नहीं हैं; तब वे काञ्चन-निर्मित यमदण्ड-तुल्य भीषण गदा को घुमाते हुए, "ठहरो-ठहरो" कहकर बड़े वेगसे झपटे। उन्होंने भी "मारो-मारो" शब्द करके हथियार उठा लिये और उनको चारों ओरसे घेर लिया। महाबल पराक्रान्त भीमसेनने थोड़ी देर तक उनलोगों का प्रहार सहकर, सैकड़ों योद्धाओं को यमराजके घर भेज दिया। हतावशिष्ट राक्षस भग्नांग रुधिरलिप्त कलेवर लेकर भीमके भयसे भीत हो, आर्त्तनाद करते हुए; गदा, तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति प्रभृति

अस्त्र-शस्त्र परित्याग कर, अपने-अपने प्राण लेकर भागने लगे। उनलोगोंको भागते हुए देखकर, एक सेना-नायक वीर पुरुषने हँसकर कहा,—"हे रक्षको! तुमलोगोंको धिक्कार है! एक मनुष्यके साथ युद्धमें पराजित होकर तुम सभी भागे जारहे हो! सैकड़ों युद्धोंमें जीतकर तुमलोगोंने जो यश कमाया था, आज उसको मानव-युद्धमें पराजित हो मलिन कर दिया!" यह कहनेके बाद, उसने अस्त्र-शस्त्र धारण कर भीम की ओर निशाना लगाया।

भीम-पराक्रम भीमसेनने पर्व्वत के समान खड़े होकर, समुद्र-तरङ्गके समान सेनापति का प्रथम उद्योग व्यर्थ कर दिया और तीन बाणों द्वारा मत्तमातङ्ग के समान समागत सेनापतिके पार्श्वमें आघात किया। सेनापतिने भी पञ्चबाण के समान पाँच बाणों द्वारा भीमसेन को विमोहित कर दिया। तब भीमने पिनाकीके समान भीषण आग्नेयास्त्र चलाया। उन्होंने भी वरुणास्त्र द्वारा उनके आग्नेयास्त्र को व्यर्थ कर दिया। तब भीमने धनुषबाण छोड़कर भयङ्कर गदा ग्रहण की और कालान्तक दण्डधर के समान मण्डलाकार पथमें आक्र-मण करने लगे। सेनापतिने गदा खण्डित करनेके लिये तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाण चलाये। चलाये हुए बाण गदा की चोट से चूर्ण-विचूर्ण होगये। तब सेनापतिने रुक्मदण्डमय अयोनिर्म्मित भयानक शक्ति चलायी। महाशक्तिने जाज्वल्यमान उल्का के समान, नभोमण्डलमें व्याप्त होकर, भीमके दक्षिण अङ्ग को विदा-

रण कर दिया। भीमने शक्तिके आघातसे निपीड़ित हो, सिंह-नाद करना छोड़ दिया। वह रोष-कषायित लोचनोंसे गर्जन करते हुए शत्रु की ओर दौड़े। सेनापतिने भीमको निवृत्त करना दुःसाध्य समझ कर, देदीप्यमान शूल चलाया। भीमसेन ने गदायुद्ध की रीति के अनुसार सेनापति के चलाये हुए शूल को व्यर्थ कर दिया। सेनापति शूल चलाना निष्फल देखकर, दाँत से अधर काटते-काटते, चन्द्रहास तलवार हाथमें लेकर भीम की ओर दौड़े। तब वृकोदरने अन्तरीक्षमें जाकर, शत्रु-घातिनी गदा घुमा कर सेनापतिके ऊपर फेंक दी। वज्र जिस प्रकार वनस्पतियों को ध्वंस कर देता है, उसी प्रकार भीम की गदाने सेनापतिको पृथ्वी पर गिरा दिया। राक्षस-सैन्य सेनापति को गिरते हुए देखकर, कुवेर के गृह को लक्ष्य कर प्राण लेकर भागी। वे अपने क्षत-विक्षताङ्ग और रुधिरलिप्त कलेवर लेकर यक्षाधिपके सामने जाकर कहने लगे,—"देव! एक महाबल-पराक्रान्त मनुष्यने आपके कालास्य सेनापतिको सेनाके सहित मार दिया है। वह सौगन्धिक अपहरण कर रहा है। हमलोग भाग्यसे किसी प्रकार जीवित रह गये हैं। यही संवाद देने के लिये हमलोग यहाँ आये हैं। अब आप जैसा उचित समझिये, वैसा कीजिये।" यह कहकर भीम-कृत सम्पूर्ण वृत्तान्त वहाँ निवेदन कर दिया। धनेश्वरने रक्षकोंके मुखसे आद्योपान्त सारा समाचार सुनकर कहा,—"भीमसेन क्षत्रिय है, वह क्षत्रिय-रीति के अनुसार पुष्प लेगा। तुमलोगोंने उसको

छोड़कर अनुचित किया है। अब तुम लोग यथास्थान जाओ और अपना-अपना कार्य्य करो। इधर भीमसेनने इच्छानुसार सौगन्धिक लेकर, रक्षकों को कातर आँखों से विलोकित हो, द्रौपदी के समीप आकर उपहार प्रदान किया। द्रौपदीने प्रीति-विस्फारित लोचनोंसे प्रणय-बहुमान सम्भाषण द्वारा भीम का परिश्रम-खेद दूरकर, कुसुम ग्रहण किये। भीम इसी प्रकार द्रौपदी के प्रिय कामोंको करते थे और बीच-बीचमें मृगया द्वारा पशुमांस ला लाकर साथके ब्राह्मणों को तृप्त करते थे।

पाण्डव बड़े सुखके साथ वहाँ समय व्यतीत करने लगे। एक दिन राजा युधिष्ठिरने अर्जुन के विरहमें कातर हो, भाइयों, द्रौपदी, महर्षि लोमश और पुरोहित धौम्यको बुलाकर कहा,—"हमलोगोंने तीर्थ-भ्रमण करके चार वर्ष व्यतीत किये। देवर्षि के प्रभाव से विविध तीर्थ, मुनियोंके पवित्र आश्रम, निर्म्मल-सलिला नदी, रमणीय सरोवर, मनोहर वन, अत्युच्च शैल प्रभृति नाना प्रकारके मनोहर स्थान देखे। महर्षि की अनुकम्पा न होती, तो हमलोग इन मनोहर स्थानों को नहीं देख सकते थे। मेरी तीर्थ-दर्शन करने की इच्छा पूरी होगयी। जिस समय अर्जुन दिव्यास्त्र लाभ करने के लिये जाने लगा, उस समय मुझसे कह गया था, कि पाँचवें वर्ष कृतविद्य और प्रत्यागत होकर आपके साथ में भेंट करूँगा। उसकी बात कभी खाली जानेवाली नहीं। पाँचवें वर्षमें अब कई मास बीत गये। कार्य्य पूर्ण होनेमें थोड़े ही दिन बाकी हैं।

इसी समय मेघमण्डल को भेद कर, महेन्द्ररथ उन लोगों के मस्तकों के ऊपर आविर्भूत हुआ। (पृ० १८३)

NARSINGH PRESS CALCUTTA.
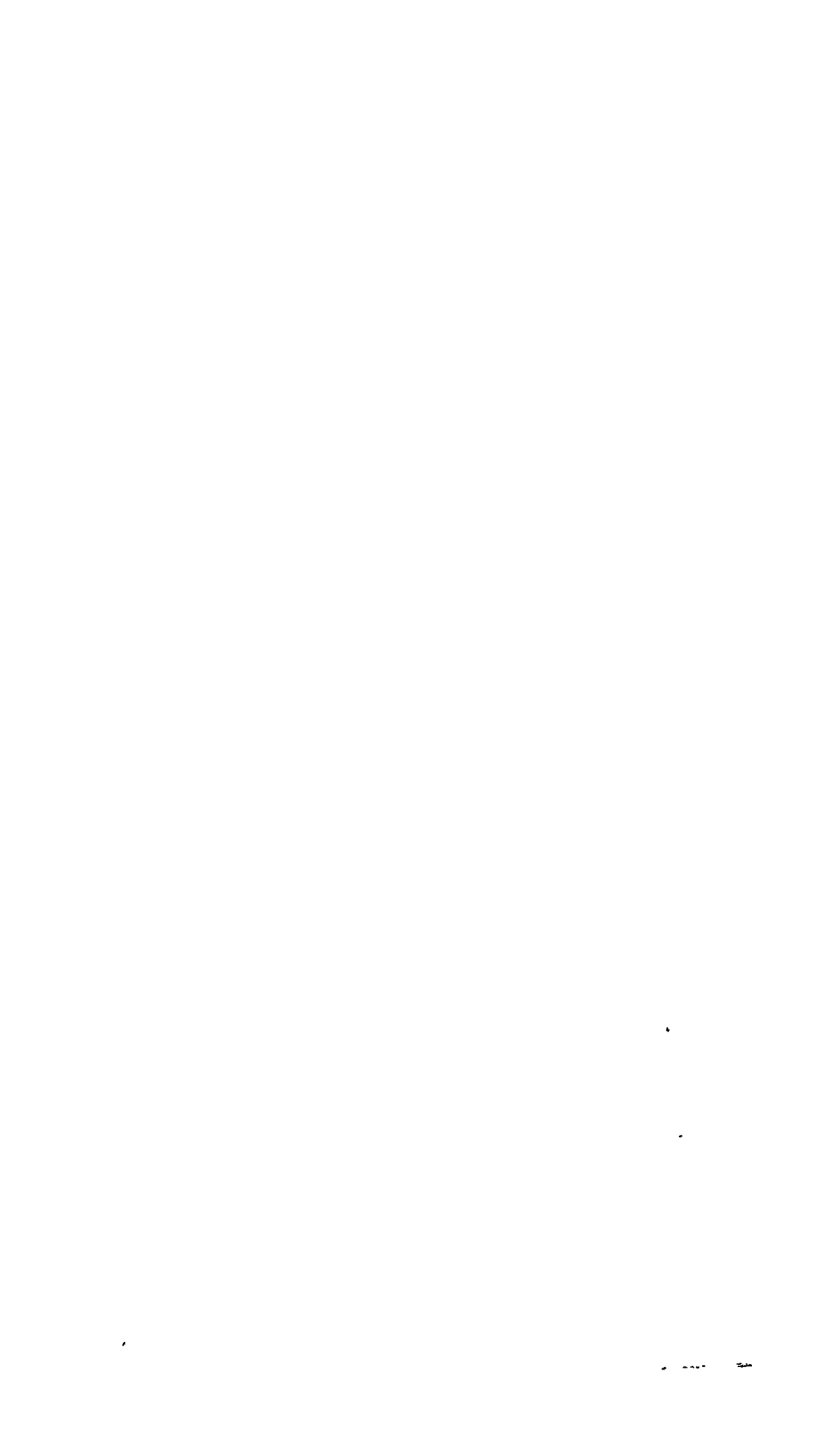
अतएव हमलोग यहीं रहकर, पूर्ण-मनोरथ धनञ्जय को स्वर्ग-लोकसे भूलोकमें अवतीर्ण होते हुए देखेंगे। यह दृढ़ विश्वास है, कि स्वर्गलोकमें किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है; तथापि स्नेह का ऐसा स्वभाव है, कि वह अनिष्टके सिवा इष्ट की आशङ्का नहीं करता। अर्जुनके विरहमें मेरा अन्तष्करण इतना अस्थिर हो गया है, कि मैं अब थोड़ा भी विलम्ब नहीं सह सकता। प्रिय-वियोग स्वभावतः ही असह्य होता है। मिलन होनेके पहले, वह वियोग जलागम-दिवसके समान अत्यन्त सन्तापदायक हो जाता है। फलतः, मेरा अन्तःकरण अत्यन्त अस्थिर हो गया है। प्राण समय वितानेमें असमर्थ होगये हैं। अर्जुनके आनेमें विलम्ब होने से, यह निश्चय ही वहिर्गत हो जायँगे।"

इसी समय मेघमण्डलको भेदकर, माहेन्द्ररथ उन लोगोंके मस्तकोंके ऊपर आविर्भूत हुआ। देखते-देखते मातलि-परि-चालित पुरन्दर-विमान मन्दर पर्व्वत पर अवतीर्ण हुआ। दिव्याभरणधारी अर्जुन ने रथसे उतर कर, विनीत भावसे गुरु-जनों को प्रणाम और अपने दोनों बड़े भाइयों को अभि-वादन किया। उन्होंने भी उन्हें प्रत्यभिनन्दित किया। नकुल सहदेवके प्रणाम करने पर, अर्जुनने उनलोगोंको स्नेह-सम्भाषण-पूर्व्वक आलिङ्गन किया। पाण्डव अर्जुन को पाकर जितने प्रसन्न हुए, अर्जुन भी उनलोगोंके समागम से आनन्दित हुए। थोड़ी देर प्रिय सम्भाषणके बाद, राजा युधिष्ठिरने माहेन्द्ररथको

प्रदक्षिणा कर मातलि की संवर्द्धना की। मातलि भी अर्जुनके प्रति सुरपति की प्रीति और प्रसाद का वर्णन कर, रथ पर सवार हो, इन्द्रके पास चले गये। मातलि के चले जाने पर अर्जुनने प्रणयिनी द्रौपदी को प्रणय-सम्भाषण द्वारा सन्तुष्ट करके, सचीपतिके प्रसन्नतापूर्व्वक प्रदत्त सभी दिव्याभरण दे दिये। अनन्तर कौतुक-पूर्ण स्वर्गीय वृत्तान्त द्वारा सबको चमत्कृत कर, नकुल सहदेवके साथ कुश-शय्या पर सोकर यामिनी यापन की।

समुन्नति के बाद पतन होता है; इसी कारण पूर्णचन्द्र सागरमें पतित होगये। निशा निशानाथ का विरह असह्य समझकर, उनकी अनुगामिनी होगयी। सहचरी प्रिया कौमुदी सर्व्वरी की सहचारिणी हुई। उषाने आरक्त सन्ध्याके साथ उनलोगों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आगमन किया। अरुणने तमो-राशि का नाश करने के लिये ही लोहित वर्ण धारण किया। दिवसनाथने राज्य का शासन करनेके लिये, उन्नत उदयाचल-सिंहासन पर अधिरोहण किया। पूर्व दिशाने दिकपतिको उदय-दिशा देखकर, लाल वसन धारण किया और समागत स्वामीको सिन्दूर-बिन्दुके समान सीमन्तमें धारण किया। भास्कर के दर्शन से तस्कर के समान अन्धकार-समूह अरण्यमें जा छिपे। तिमिरारिको तमोराशि का नाश करते देखकर, शङ्कासे व्याकुल काक-कुल आत्म-परिचय देनेके लिये काँव काँव करने लगा। अरुणशिखा, उदयाचल-चूड़ा को ताम्रवर्ण को देखकर, ईर्षावश कुकड़ूँ कूँ कुकड़ूँ कूँ बोलने लगा।

कमलिनी मित्रको देखकर कुछ विकसित हुई। अलिराजने कोमल कमलिनी की गर्भशय्या का परित्याग किया। वायु पद्मगन्धसे अधिवासित हो, सुगन्ध वितरण-पूर्वक, इतस्ततः विचरण करने लगा।

प्रातःकालमें, धनञ्जयके अभिवादन करने पर, राजा युधिष्ठिरने उनका मस्तक आघ्राण कर प्रीति-प्रफुल्ल चित्तसे पूछा,—"भाई! तुम किस प्रकार पुरन्दरके सामने गये, और उनको कैसे परितुष्ट किया? देवताओंके लिये असाध्य कार्य्य हो क्या है? तुमने उसको कैसे किया?" अर्जुनने कहा, "धर्म्मराज! मैं मातलि-परिचालित दिव्य रथ पर आरोहण कर, अमरावती पहुँचा। पहले आदित्य, वसु, रुद्र प्रभृति देवताओंको प्रणाम किया। अनन्तर देव-सभामें गया और अभिवादन कर, हाथ जोड़कर इन्द्रके सम्मुख खड़ा हो गया। उन्होंने स्नेह के साथ मेरी ओर देखकर, अनुग्रह-पूर्व्वक, अपने सिंहासनके आधे हिस्से पर मुझे बैठनेके लिये कहा। मैं जयन्त की अपेक्षा अपने तईं अधिक भाग्यवान समझ कर जब सिंहासन पर बैठ गया, तब उन्होंने अपने कर-कमल द्वारा मेरा शरीर स्पर्श कर, वात्सल्य-पूर्ण शब्दोंमें कहा,—"वत्स! तुम सुरलोक में रहकर, स्वर्गीय सुखके अनुभवके साथ दिव्यास्त्र सीख सकोगे। उसी समय से मैं उनकी आज्ञाके अनुसार, महामान्य देवगण और गन्धर्वों का सहचर हो, सुरलोकमें सुख-पूर्वक रहने लगा। अस्त्र-शिक्षाके समय विभावसु गंधर्वराज के पुत्र चित्रसेनके

साथ मेरी मित्रता हो गयी। उन्होंने प्रेमपूर्वक मुझे नाच-गान प्रभृति चौंसठ कलाओंमें होशियार कर दिया और महेन्द्र समय-समय पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग, संहार, आवृत्ति प्रभृति इति-कर्त्तव्यता की शिक्षा देते थे; मैं बड़े ध्यानसे शिक्षा ग्रहण करता था। शिक्षितव्य विषयमें आग्रहातिशय और शिक्षित विषयमें अनुराग दिखाता था, इसलिये देवराज मेरे ऊपर परम सन्तुष्ट रहते थे।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर, एक दिन अमरनाथ ने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर कहा,—"वत्स! तुम सभी दिव्यास्त्र पा चुके। धनुर्वेद की सांगोपांग शिक्षा तुम्हें मिली है। गान्धर्व-विद्या में पारदर्शी हुए हो। तुमने अस्त्र चलानेमें इतनी निपुणता प्राप्त की है, कि रणस्थलमें कोई तुम्हारी समकक्षता नहीं कर सकेगा। तुम संग्राममें दुर्जय होगे, सबको सुखसे जीत सकोगे। अब तुम्हारा गुरु-दक्षिणा देनेका समय आगया है। देना अङ्गीकार करो, तो मैं तुमसे गुरुदक्षिणा लूँगा।"

मैं सुरेन्द्रकी बात सुनकर मनही मन सोचने लगा। ये सभी देवताओं के अधीश्वर हैं; इनकी इच्छा से समस्त जगत् शासित होता है। इनकी कोई अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहती। पर बिना गुरुदक्षिणा दिये शिष्यकी शिक्षा सिद्ध नहीं होती, इस सदाचारकी रक्षाके लिये कुछ अवश्य देना चाहिए। यह सोच, हाथ जोड़कर मैंने कहा,—"त्रिलोकनाथ! आपको कुछ भी अप्राप्य नहीं है। प्रार्थयितव्य भी दुर्लभ नहीं,

जो मेरी सामर्थ्य के भीतर का काम होगा, मैं उसको अवश्य करूँगा। उसमें कुछ भी त्रुटि नहीं करूँगा।" देवराज ने मेरी बात सुनकर प्रसन्नता के साथ कहा,—"वत्स धनञ्जय! तुमने देवादिदेव महादेवसे पाशुपत अस्त्र पाया है। दिक्पालों से सभी दिव्यास्त्र ग्रहण किये हैं। मैंने वज्र प्रभृति बड़े-बड़े सभी अस्त्र तुम्हें अर्पण किये हैं। इन सब अस्त्रों के बलसे तुम अमित बलशाली हो गये हो। इस त्रिभुवन में तुम्हारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। निवात कवच नामके तीन करोड़ दुर्दान्त दानव इस समय मेरे अबाध्य शत्रु हो रहे हैं। उन सबका आकार-प्रकार एक समान है; बल-विक्रम में भी सब एकही से हैं। उन्हींको मारकर मुझे गुरुदक्षिणा प्रदान करो।"

मैंने जब गुरुदक्षिणा देनेके लिये आग्रह दिखाया, तब दानवारि ने अपने हाथसे मेरे मस्तक पर किरीट बाँध दिया और नाना प्रकारके दिव्य अलङ्कारों द्वारा मुझे अलङ्कृत कर, गाण्डीवपर डोरी लगा दी। देवताओंने देवदत्त नामक शङ्ख प्रदान करके कहा,—"जिष्णो! तुम इस शङ्खको बजाओगे, तो दानव अभिभूत हो जायँगे। मैंने उन लोगोंका आशीर्वाद ले, मातलि-परिचालित जैत्र नामक माहेन्द्र-रथ पर आरोहण किया। पुरन्दरने जब मेरी सहायताके लिये मेरे साथ देव-सेना दी, तब मैंने कहा,—"वृत्रहा! मैंने अकेले ही गुरुदक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा की है। सेनाकी सहायता मुझे नहीं

चाहिये। देवसेनाके लौट जाने पर मातलिने रथ चलाकर मुझसे कहा,—"धनञ्जय! मेरे रथ चलाने पर मेघ-वाहनका भी आसन विचलित हो जाता है। आप कुछ भी विचलित या चकित नहीं हुए; इससे मालूम होता है कि आप देवेन्द्रके अजेय निवात कवच प्रभृतिको मारनेमें समर्थ होंगे।" यह कह, रथ चलानेमें कुशल अश्व-तत्त्ववित् मातलिने मनोवेगगामी तुरङ्गियों को दौड़ाकर, थोड़ी देरमें मुझे पाताल लोकमें पहुँचा दिया। रथके घरघर शब्द से दानवोंको भय दिखाकर, दानवपुरीको घेर लिया। मैंने भी देवदत्त शङ्ख बजाया। उसकी ध्वनिकी प्रतिध्वनिसे पाताल-गर्भ परिपूर्ण हो गया।

तब निवात कवच प्रभृतिने शङ्खनाद और रथ-निर्घोष सुन कर, पुर-द्वार रक्षा विधान-पूर्व्वक, हम लोगों पर आक्रमण किया और चारों ओरसे शेल, शूल, मूसल, मुद्गर, शतघ्नी प्रभृति विविध अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। मुझे असुरों की युद्धरीति और व्यूह-रचनाकी प्रणाली जाननेके लिये उत्सुक देख कर, मातलिने इस कौशलसे रथ चलाया, कि मैं थोड़ी ही देरमें उन लोगोंको वेष्टनकर, उन लोगोंकी युद्ध-विषयक गति-प्रवृत्ति जान गया। इसी समय सहस्र-सहस्र निवात कवचों ने बाण-वर्षा द्वारा मुझे व्यतिव्यस्त कर दिया और मेरे रथकी चाल तक रोककर आक्रोश करने लगे। उस समय मैंने बड़े कष्टसे उनके शरजालका निवारणकर, आत्म-रक्षा की। किन्तु निवात और कवच पुनर्व्वार दशों दिशाएँ आच्छन्नकर, मेरे ऊपर
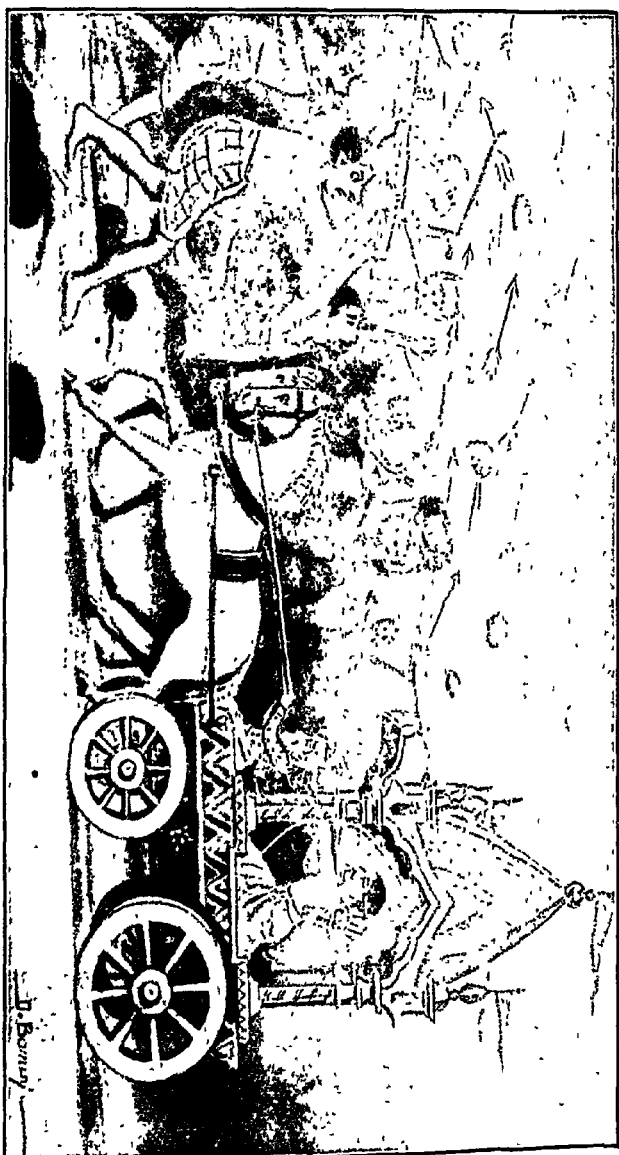
इन्द्रके वैरी निवात कवच राक्षसों और अर्जुनका भयङ्कर

अजस्र अस्त्र-वर्षण करने लगे। इससे मेरे घोड़े अस्थिर, मातलि क्षतविक्षताङ्ग और मैं रुधिरलिप्त-कलेवर हो गया। अनन्तर: भगवान् स्थिर भावसे विवेचना करके एक ओर लक्ष्य कर, आनतपर्व्व आशुगासों आशुगवर्षा करने लगा। उस समय मैंने ऐसी लघुहस्तता दिखायी, जिसकी मुझे भी कभी आशा नहीं थी। मैं भी अनुभव नहीं कर सकता था, कि मेरा हाथ किस समय तुणीरसे वाण ग्रहण और किस समय गाण्डीव पर वाण रखता है। मैंने दोनों हाथोंसे वाण चलाने का अभ्यास किया था। उससे उस समय मुझे बड़ी सहायता मिली। राक्षस के असंख्य रहनेसे, मेरा एक भी शर व्यर्थ नहीं गया और निशाना लगानेमें भी कुछ अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। दानवोंने वाण चलानेमें मेरी फुर्ती देखकर, मुझे अकेला रहने पर भी, हज़ारोंके बराबर समझा। अन्तमें जब वे मेरा पराक्रम नहीं सह सके, तो सम्मुख-संग्राम से भाग गये और उसी मुहूर्त्त विपुल विक्रमके साथ फिर मेरे पश्चाद्-भाग पर आक्रमण किया। मुझे उस समय मालूम हुआ, कि एक दूसरा दानवदल तुमुल युद्ध करनेके लिये आया है। उस समय मातलिने मेरे रणचातुर्य्य की बड़ी प्रशंसा की। मैं भी उनका रथ चलना देख कर विस्मयापन्न हो गया। शत्रु पलायित होकर, मेरे चाहे जिस भाग पर आक्रमण क्यों न करते, रथ चलाने की निपुणता से मैं उन्हें अपने सम्मुख ही देखता था।

अनन्तर माया-युद्ध आरम्भ किया। चारों ओरसे भीषण

शिला-वर्षण करने लगे। मैंने जब माहेन्द्र अस्त्र द्वारा उन्हें निवारित किया, तो चारों ओरसे मूसलाधार वर्षा होने लगी। बीच-बीचमें झञ्झावात गभीर गर्जन और विद्युत्पात द्वारा हमको भय दिखाने लगे। मैंने महेन्द्रदत्त प्रदीप्त विशोषण अस्त्र-द्वारा उनके माया-जालका संहार किया। तब दानव अपने उभयास्त्र व्यर्थ देखकर, एकही साथ नाना प्रकारकी माया दिखाने लगे। मेघके बिना झञ्झावात और मूसलाधार वर्षा होने लगी। बीच-बीचमें शिलामयी और अग्निमयी वृष्टि होने लगी। अनन्तर चारों ओरसे घोरतर अन्धकारने आकर, दशों दिशाओंको आच्छन्न कर लिया। तब मातलि ने भीत होकर कहा,—"अर्जुन! दानवोंने भयावह लोमहर्षण मायाजाल फैला रक्खा है। मैंने अमृत हरण करनेके समय देवता और असुरों का घोरतर संग्राम तथा वृत्र-वासवका भयङ्कर समर देखा है और उन युद्धोंमें निर्भय होकर मैंने सारथिका काम किया है। धनञ्जय! मैंने ऐसी आसुरी माया कभी नहीं देखी थी। मुझे भय हो रहा है, हाथसे बागडोर छूटती जाती है। मैं सारथि के काममें नितान्त अपटु हो रहा हूँ।"

मैंने मातलिको भयाकुल देखकर साहस प्रदान-पूर्व्वक कहा,—"पाकशासन-सारथे! सारथीके भीत होनेसे रथी अस्थिर होता है। तुमने सुरासुर-युद्ध में कई बार महेन्द्रको साहस प्रदान-पूर्व्वक उत्साही किया है। तुम्हारे रथ चलानेकी निपुणतासे पुरन्दरने कई बार परित्राण पाया है। तुम धैर्य्यावल-

यत्न-पूर्वक आसन-बद्ध हो, मेरा बाहुबल, अस्त्र-कौशल, और गाण्डीवके प्रभावको परीक्षा करो। मैं शीघ्रही दानवी माया को विनष्ट करता हूँ।" यह कहकर, मैंने विश्वविमोहिनी अस्त्रमयी माया की और उसके बाद ही ब्रह्मास्त्र छोड़ा। मेरे मायास्त्र के बलसे आसुरिक माया तिरोहित हो गयी और ब्रह्मास्त्रके द्वारा असुरोंका संहार होने लगा। जिस प्रकार पके ताड़के फल ताड़के वृक्षसे गिरते हैं, उसी प्रकार अन्तरीक्ष से दानवोंके मस्तक गिरने लगे। उस समय भी दानव, मायाके प्रभावसे अदृश्य हो, अविरत वर्षा करने लगे। जिस प्रकार धाराधर महीधरके शृङ्गपर वारिवर्षण करता है, उसी प्रकार असुर मेरे रथके ऊपर शरों की वर्षा करने लगे। थोड़ी देरमें मैंने देखा, कि शरविद्ध अश्वनिचय शल्लकी के समान, सारथी कण्टकित तरु के समान और मैं रुधिराक्त-कलेवर गैरिकराग-रञ्जित शैल-शृङ्गके समान हो गया हूँ। मातलिने मुझे भय-भीत समझकर कहा,—"धनञ्जय! शीघ्र वज्रास्त्र चलाओ।" मैंने मातलिके उपदेशानुसार गाण्डीवपर भीषण वज्रास्त्र रक्खा, और मन्त्रपूत महाशनिको सुरराज का स्मरण कर, असुरों के उद्देश्य से चलाया। वज्रके शतकोटि से सैकड़ों लोहमय अग्निमुख शिलीमुख निर्गत हो, गगनमण्डलको आलोकमय कर, बड़े वेग से दानवदल में प्रवेश कर, उनका संहार करने लगे। असुर परशुछिन्न शालयष्टिके समान धरातलशायी होने लगे। जितने दानव पृथ्वी परसे युद्ध कर रहे थे, विक्षिप्त अस्त्र ने

पड़ते ही उनका संहार कर दिया। तब हतावशिष्ट दैत्योंने भीत हो, माया-युद्ध संवरण-पूर्व्वक, पुरमें दुर्ग का आश्रय लिया। मैं रथ-द्वारा वहाँ पहुँचकर अग्निमय बाण चलाने लगा। थोड़ी देरमें पुरी दग्ध और निवात कवच-गण निहत हो गये। तब पुरमें दानव-वनिताएँ हाहाकार करके रोने लगीं। अनन्तर मैंने मातलिसे कहा,—"अब बीभत्स कार्य्य दर्शनीय नहीं है। हम लोग कृतकार्य्य हो गये हैं, अब सुरलोकको चलें।" मातलि मेरे बल-वीर्य्य और रण-चातुर्य्य की भूयसी प्रशंसा करते हुए रथ हाँकने लगे।

रास्तेमें अपूर्व काञ्चनमयी एक पुरी देखी। पूछा,—"मातले! यह किसकी पुरी है? इसने अपने सौन्दर्य्य-गुणसे अमरावती को पराभूत कर दिया है।" मातलिने कहा,—"धनञ्जय! पुलोमा और कालका नामकी दो असुर-कन्याओंने बहुत समय तक ब्रह्माकी आराधना करके, इस नगर को प्राप्त किया है। इसका नाम हिरण्यपुर है। देवराजका इस पर आधिपत्य नहीं है। भगवान् स्वयम्भू के वर-प्रभाव से, यहां पर देवताओंके शत्रु निरापद वास करते हैं। इन्होंने ब्रह्मा के निकट देवताओं से अवध्यता की प्रार्थना की थी। ये अवज्ञावश मर्त्यलोक में आस्था नहीं करते। भूत-स्रष्टा प्रजापतिने मनुष्य के हाथ इनका विनिपात निर्द्दिष्ट किया है। अतएव आपही कालकेय और पौलोमियों का संहारकर, सुरपतिके अपर शत्रुओं का निपातकर, दूसरा प्रिय काम कीजिये।" यह कह मातलि

ने मुझे हिरण्य नगर के पुरद्वार पर पहुँचा दिया। मैं धनुष पर टङ्कार देकर, बारम्बार देवदत्त शङ्ख को बजाने लगा। असुर गाण्डीव का निर्घोष सुनकर, प्रतिपक्षको युद्धार्थी समझ, युद्ध के लिये तय्यार होगये। मनुष्य समझकर, सागर-तरङ्गके समान सहस्र-सहस्र दानवी सेना दौड़ी और मुझे लक्ष्य करके कोई नाराच, कोई भाला, कोई ऋष्टि, कोई नालीक, कोई कुन्त, कोई घोर धार कुठार निक्षेप करने लगे। मैंने भी शिक्षा-कौशल से सभी अस्त्र-शस्त्रोंको विफल कर दिया। उन लोगों का संहार करनेके लिए, मैंने सभी दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया। महाबली दानव-दलने थोड़ी देरमें मेरे प्रयुक्त सभी दिव्यास्त्रोंको पराभूत कर दिया और मायाके बलसे मुझको विमोहित कर, समराङ्गणमें नृत्य करने लगे।

मैंने दानव-संग्राममें नितान्त निपीड़ित और एकान्त व्यथित हो, योगेश्वरके नामोच्चारण-पूर्वक, महारौद्र रुद्रदेवका पाशुपति अस्त्र गाण्डीव पर नियोजित किया। मन्त्रसे पवित्र करते ही, उस दुर्वह दुर्भर महास्त्रपर, त्रिमस्तक नवलोचन षड़्भुज त्रिपुरान्तक की कालान्तक संहार-मूर्त्ति आविर्भूत देखकर, नमस्कार-पूर्व्वक, दुर्जय दनुज-दलनार्थ उस महास्त्रको छोड़ा। विक्षिप्तास्त्र के नभोमण्डलमें उत्थित होने पर, उसका भयङ्कर आकार देखकर, मैं विस्मयापन्न हो गया। विश्व-दहन में प्रवृत्त कालाग्निके समान उसका समुज्ज्वल वर्ण था। संसार का शोषण करनेमें समुदित द्वादश सूर्य्यों के समान उसका तेज

था। महाप्रलय-मारुतके समान उसका वेग था। प्रलय-घन-घटाके समान उसका गर्जन था; और उससे एकाक्ष, एक-दंष्ट्र, त्रिमूर्द्ध, और विराटाकार भयङ्कर भूत प्रेत रुद्र पिशाचों की मूर्त्तियों ने निकल कर, त्रिशूल धारण-पूर्व्वक, मुहूर्त्त भरमें दानव-वंशको निर्मूल कर दिया; और मेरा आनन्दवर्द्धन कर, विश्वेश्वर की भीममूर्त्तिके तिरोधान-पूर्वक, पुनर्वार वह मेरे तूणीरमें प्रविष्ट हो गया। जिस प्रकार देवर्षि जयशील आखण्डल की स्तुति करते हैं, उसी प्रकार मुझे देव-कार्य्य सिद्ध करने में कृतकार्य्य देख कर, उन्हों ने स्तुति की थी। मेरे मस्तक पर आकाशसे पुष्प-वृष्टि हुई थी; दुन्दुभिने विजय-घोषणा की थी; इस प्रकार कालकेय और पौलोमियों का निपात कर, अमरावती में पहुँचने पर, महेन्द्र स्वयं आगे बढ़ कर मुझे लेनेको आये। अनन्तर मातलिके मुख से निवात-कवच, कालकेय और पौलोमियोंका आनुपूर्व्विक संग्राम-विवरण सुन कर, हर्षोत्फुल्ल लोचनोंसे आनन्द-वाष्प गद्‌गद स्वरसे बोले,—"धनञ्जय! तुम ने सुरासुर का दुष्कर कार्य्य कर के गुरु-दक्षिणा दे दी; और मेरे भयानक शत्रुओं को मार कर, मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य्य किया है। अतएव मेरे वरके प्रभावसे अद्यावधि सभी दिव्यास्त्र तुम में सन्निवेशित रहेंगे; तुम रणक्षेत्र में दुर्जय रहोगे। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और अन्यान्य महीपाल-गण तुम्हारे युद्ध का अनुकरण भी नहीं कर सकेंगे। तुम्हारे बाहुबल से राजा युधिष्ठिर ससागरा पृथ्वीके अद्वितीय अधीश्वर होंगे। अन-

न्तर इस दुर्भेद्य कवच को तथा अनेक प्रकारके दिव्य आभरणोंको देकर, अपने हाथसे इस दिव्य किरीट को मेरे मस्तक पर रखकर, मुझे किरीटी कहके पुकारा। मैं विनय-नम्र मस्तकसे उनका आशीर्वचन ग्रहण कर, उसी समयसे पुरन्दरपुरमें बड़े सुखके साथ समय व्यतीत कर रहा था। सम्प्रति, सुरेन्द्रकी आज्ञासे गन्धमादन पर आकर, आप और भाईयोंके दर्शन-सुख से प्रसन्न हुआ हूं।

राजा युधिष्ठिरने अर्जुनकी बात सुनकर हर्ष-स्नेह-गद्गद् स्वरसे कहा,—"धनञ्जय! मुझे पूर्ण विश्वास था, कि तुम महेन्द्र की आराधना करके अवश्य दिव्यास्त्र पाओगे। तुम दुर्जय दनुजोंका संहार करके, उपरान्त देवेन्द्रके अनुग्रह-पात्र हुए हो, यह मेरी आशासे परे की बात है। मैं भी तुम्हारे बाहुबलसे सुरेन्द्र द्वारा परिचित होकर, अपने तईं धन्य समझता हूँ। मैं आजहीसे अब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पराजित और कर्णको हीन-वीर्य्य समझता हूँ। मैं ससागरा पृथ्वी का अद्वितीय अधीश्वर हो गया।" यह कहकर अर्जुनको आलिङ्गन किया।

भोजनोपरान्त सबके सुख-पूर्वक बैठनेपर, द्रौपदीने अर्जुन से कहा,—"हे नाथ! मैंने सुना है, कि स्वर्ग ही त्रिभुवनमें सारात्सार स्थान है, जिसको पानेके लिये मनुष्य अपने सारे ऐहिक सुखोंको छोड़कर विविध याग-यज्ञका अनुष्ठान करते हैं और व्रतोपवासादि द्वारा अपने दुर्बल शरीरसे तपस्याका कष्ट स्वीकार करते हैं। वह दिव्य स्थान कहाँ है? उसका

विस्तार कितना है? वह किस प्रकार बसा हुआ है और उसमें क्या दोष-गुण हैं? तुमने उसे अपनी आँखोंसे देखा है, तुम्हारे निकट स्वर्गीय वृत्तान्त भली भाँति सुन सकूँगी, इसीलिये मेरा कौतूहल बहुत बढ़ रहा है।"

अर्जुनने कहा,—"द्रुपदराजनन्दिनि! मैंने धर्म्मराजकी आज्ञासे अचलराज हिमाचलके उत्तुङ्गशृङ्ग पर अनादिदेव महादेवकी आराधना की। उन्होंने मेरी तपस्यासे प्रसन्न हो कर, मुझे पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। वह वृत्तान्त पहलेही तुम लोगोंको पूजनीय देवर्षिके द्वारा मिल चुका है। अनन्तर मैं पुरन्दरकी आज्ञासे, मातलि-समानीत दिव्यरथ पर आरोहण करके, आकाश-पथसे स्वर्गीय राजधानी अमरावती में गया। इस मन्दरगिरिके उत्तर भागमें, उज्ज्वल कनक-द्युति त्रैलोक्यके स्तम्भ-स्वरूप, जिस अचलराजको देख रही हो, उसके बायीं ओर सुमेरु है; उसीमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये त्रिभुवन क्रमसे ग्रथित और व्यवस्थापित हैं। उसके नीचे पाताल लोक, मध्यस्थलमें मर्त्य-लोक और ऊपर भागमें स्वर्गलोक व्यवस्थापित है। प्रभाकर प्रतिदिन मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। दिवाकर के अस्त हो जानेपर जब सन्ध्या हो जाती है, तब वे उत्तर की अन्तिम सीमा तक जाते हैं। फिर जब पूर्व-मुख लौटते हैं, तो उस समय हम लोग उन्हें लौटते हुए देखते हैं। ज्योतिष्क-मण्डल सूर्य्य-मण्डल के आकर्षणसे आकृष्ट हो, उन्हींके चारों ओर परि-भ्रमण करता है। चन्द्रमा भी सूर्य्य मण्डलके अधोभागमें

समस्त्रपात नक्षत्र-मण्डलके सहित मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं। दिवाकर की गतिसे ही वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन और रात ये सब होते हैं।

"सुमेरुका शिखर अत्यन्त रमणीय हिरण्मय सुखप्रद स्थान है। उसी स्थान को स्वर्गधाम कहते हैं। वह तैंतीस सौ योजन में है। स्वर्गसुख अत्यन्त उपादेय है। वहाँ रमणीय सुखस्पर्श सुगन्ध पवन धीरे-धीरे सर्वदा सञ्चारित होता है। वृक्ष सर्वदा नवीन पल्लव और प्रफुल्ल कुसुमोंसे सुशोभित तथा रसाल फलोंके भारसे अवनत रहते हैं। भास्कर, उर्द्धमुख हेममय मयूखके द्वारा अन्धकारमात्र हरण कर, आलोक वितरण करते हैं। चन्द्रमा सदा पूर्ण उदय होते हैं। उनकी किरणें वहीं सुधामय मालूम होती हैं।

स्थलभाग रत्नमय है। कोई स्थान रजतरेणुद्दीपित सिकतामय है। कोई स्थान पद्मरागोद्भासित कमलमय है। कोई प्रदेश हरित्मणि-खचित अपूर्व दूर्वामय है। कोई स्थान महानीलमणि-राजित इन्दीवरमय है। कोई भाग शोण मणिभूषित कोकनदमय है। कोई स्थान हीरकराजि-राजित कुमुदमय मालूम होता है। वहाँ उद्यानश्रेष्ठ नन्दनवन है। उस स्थान पर सब प्रकारके जीव सब प्रकारका आनन्द प्राप्त करते हैं, इसीसे उसका नाम नन्दन कानन है। इस काननमें अनेक प्रकारके विलास-भवन, अनेक प्रकारके केलि-निलय, और सुधाधवलित कैलास-शैलके समान सभी सौध सुसज्जित हैं। विश्व-

कर्म्माको बनायी हुई उन सब सुदृश्य अट्टालिकाओंके देखनेसे और कोई भी प्रासाद लोचन-लोभनीय नहीं मालूम होता। वहाँ उर्वसी प्रभृति स्वर्गकी नाचनेवाली और हाहा हूहू प्रभृति गायक नाच-गान किया करते हैं। जिन-जिन पदार्थोंमें माधुर्य्य है, उन सभीको शक्ति विशेष द्वारा एकत्र संग्रहीत करके, वे गान करते हैं। इसी लिये उन लोगोंके संगीतमें इतना माधुर्य्य, इतना चमत्कारित्व और इतनी उपादेयता रहती है, कि उनके संगीतकी अपेक्षा श्रवण-तृप्तिकर, मनोहर, सारवान् पदार्थ और कुछ भी नहीं है। उस संगीतकी चित्तहारिणी शक्ति केवल किन्नरोंके कण्ठ-निःसृत सुस्वरके गुणसे ही उपलब्ध होती है। पृथ्वीमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, कि जिसके साथ उन लोगों के स्वरकी माधुरी की तुलना की जा सके। उसी काननके मध्य स्थानमें तरुश्रेष्ठ पारिजात नामका एक वृक्ष है। उसके पुष्पोंमें सौन्दर्य्य, कर्णोत्कर्ष कोमलता प्रभृति सभी गुण सर्वदा विद्यमान रहते हैं। वे कुसुम कभी म्लान नहीं होते। उनकी सुगन्धि इतनी दूर तक जाती है, कि उससे सारा स्वर्गधाम सदा आमोदित रहता है। वहाँ वृक्षोंका सार अभिलषित अर्थप्रद कल्पवृक्ष; रत्नोंका सार चिन्तितार्थप्रद चिन्तामणि; धेनुओंका सार कामदुधा कामधेनु; हय-रत्न उच्चैःस्रवा, और गज-रत्न ऐरावत है। इनके सिवा जातिगत जितने रत्न हैं, वे सभी स्वर्गमें हैं। उनके कारणसे स्वर्गका सौन्दर्य्य और गौरव अत्यन्त अधिक है।

"स्वर्गमें शोक, ताप, जरा, व्याधि, क्षुधा, तृष्णा, ग्लानि और श्रमजनित किसी प्रकारके दुःखका अनुभव नहीं होता; केवल आनन्दका अनुभव होता है। इन्द्रियार्थ भोग्यवस्तु वांछा-मात्रसे उपस्थित हो जाती है। इच्छा करते ही द्रव्यका आस्वाद मिलता है। स्वर्गवासी विमान पर आते-जाते हैं। वे किसी प्रकारका काम नहीं करते; केवल स्वोपार्जित सुकृत कर्मका शुभमय सुखफल सम्भोग-पूर्व्वक आनन्द-काननमें विहार करते हैं और अप्सराओंसे परिवृत होकर, रमणीय नन्दनवनमें वासनानुरूप विलास-सामग्री-पूर्ण वास-भवनमें दिव्य सुख भोगते हुए, सुखसे समय अतिवाहित करते हैं। वहाँ किसी प्रकारका दुर्गन्धमय पदार्थ नहीं है, और अपवित्र द्रव्य भी नहीं है, इसलिये उनके द्वारा शरीर मलिन या अपवित्र नहीं होता। सुरलोकमें धर्म्मपरायण, शान्त, दान्त, विनीत, वदान्य, दोषशून्य, सच्चरित्र पुण्यात्माही जा सकते हैं और जितने वीर पुरुष सम्मुख-संग्राममें वीरत्व दिखाकर प्राणत्याग करते हैं वे जाते हैं; और जितनी साधुशीला वनिताएँ कायमनोवाक्यसे स्वामियोंकी शुश्रूषा करके देहत्याग करती हैं, वे सभी धर्म्मार्जित पवित्र पुण्यधाम को जानेमें समर्थ होती हैं। जो पुरुष धर्म्मानुष्ठानसे विमुख, विषया-नुरागी, हिंसाभिरत, मिथ्याकथन-प्रिय, परस्वापहारक, अशान्त और अजितेन्द्रिय होते हैं, वे वहाँ नहीं जा सकते। कारण; स्वर्ग फलभूमि है और पृथ्वी कर्म्मभूमि है। इस लोकमें सत्कर्म्म नहीं करनेसे, परलोकमें शुभ फलका भोग नहीं किया जासकता।

"स्वर्गके सुखकी बात तो तुम सुन चुकीं। अब उसका दोष कहता हूँ, सुनो! मृत जीव पहले जीवितेश्वर, दक्षिण दिशाके अधिपति, प्रेतराज के संयमन नामक न्यायासनसे पास पहुँचाया जाता है। जिनका नाम सुननेसे शरीर रोमाञ्चित, अन्तःकरण जड़ीभूत और अन्तरात्मा विकम्पित होता है, वे ही भयङ्कर दण्डधर जीवोंके धर्म्माधर्म्मका विचार करते हैं और जीवोंके कर्म्मानुसार फलाफल निरूपण कर, सुखफल और दुःख-फल भोगनेके लिये, स्वर्ग और नरकमें कालनियमन-पूर्वक वासस्थानका आदेश देते हैं। उनके दूत कर्म्म-वाध्य जीवको यथायोग्य स्थान पर रख आते हैं। अवश जीव उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर सुख-दुःखका भोग करते हैं। धर्म्मात्मा धर्म्मराजकी सौम्यमूर्त्तिको सुहृद् समझकर, उनका दर्शन क्षेमकारक समझते हैं और अधार्म्मिक उनको भीषण दण्डधर, बुरे हृदय का और भयङ्कर समझते हैं।

"भोग्यवस्तु चिरस्थायी नहीं है। पुण्यपादप कालक्रम और भोगक्रमसे क्षीण तथा फलहीन हो जाता है। पुण्यक्षय होने पर, स्वर्गवासियोंके कण्ठकी अम्लान दिव्यमाला म्लान हो जाती है। उस समय उनके स्वर्गीय लावण्यपूर्ण मुखकी ज्योति उषाकालीन चन्द्रमाके समान विवर्ण हो जाती है। औरोंका दिव्य सुख देखकर उन्हें मनस्ताप होता है। अधःपतनोन्मुख जीवके हृदयमें भयका सञ्चार होता है। चिरकाल सुखसे कालक्षेप करके, अन्तमें दुर्गति होना विषम क्लेशकर है।

किन्तु सुकृतक्षय होनेपर, अमरलोकसे अधःपतन होना उसकी अपेक्षा महाकष्टदायक है। यही स्वर्गका बड़ा भारी दोष है। राजाकी राजच्युति, स्वाधीनकी स्वाधीनताहानि, धनीकी दारिद्र्य-दुर्गति प्राणान्त-क्लेशकर है सही; किन्तु पुण्यक्षय होनेपर स्वर्गभ्रष्ट व्यक्तिका मनस्ताप उसकी अपेक्षा कहीं अधिक क्लेशकर है, इसमें सन्देह नहीं।"

अर्जुनके मुखसे स्वर्गका वृत्तान्त सुनकर, द्रौपदीने प्रसन्नताके साथ कहा,—"हे नाथ! मनुष्य इस समय सत्कर्म्म करते हैं, तो मरने पर कर्म्म-फलसे देवलोकमें वास करते हैं; पर तुमने तो इसी पार्थिव शरीरसे पारत्रिक स्वर्ग-सुख सम्भोगकर, अमरावतीमें वास किया है, इससे तुम्हारे सत्कर्म्मकी इयत्ता नहीं है। जो हो, बहुत दिनोंके बाद, सुरसुन्दरीजन-सेवित दिव्य सुख-विमोहित मनुष्य को हम लोगोंका स्मरण होना, हम लोगोंके लिये सौभाग्य का विषय है।" अनन्तर रजनी आ पहुँची। सभीने सान्ध्य-क्रिया समाप्त कर, अर्जुनके समागमसे सुख-पूर्व्वक सोकर यामिनी यापन की।

दूसरे दिन पाण्डव अपने साथियोंके साथ कुवेरसे मिलनेके लिये कैलास पर्वत पर गये और इतस्ततः भ्रमणकर यक्षराजकी राजधानी अलकापुरीमें पहुँचे। यक्षेश्वरने बड़े आदरके साथ उन लोगोंसे मिलकर, उन्हें सुरम्य हर्म्य, मनोहारिणी वृक्षवाटिकाएँ, अमूल्य निधि, अनेक प्रकारके रत्न और अन्यान्य कई प्रकारके ऐश्वर्य्य दिखाये। पाण्डव धनेश्वरके

ऐश्वर्य्यको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। कुवेरने उन लोगोंसे कुछ दिनों तक रहनेके लिये अनुरोध किया और चैत्र-रथमें मनोरथानुरूप वासस्थान निर्दिष्ट कर दिया। वे यक्ष-राजके प्रसादलब्ध प्रासादको पाकर, द्यूतापहृत ऐश्वर्य्यको भूल गये। वसन्त काल इन लोगोंकी सेवाके लिये उपस्थित हुआ। एक तो चैत्ररथ-स्थली स्वभावत: ही मनोहारिणी थी, उस पर उसने वसन्तके समागम होनेसे कुसुम-सज्जा धारण की थी। मालूम हुआ; मानो सुन्दरी रमणी, यौवनोदय होनेपर वेश-विन्यास कर सुसज्जित हो आयी है। नवपल्लव उसका रक्ता-म्बर, पुष्पोच्चय अलङ्कार, परागवर्ण चूर्णक, मकरन्द अनुलेपन, प्रसूनकान्ति लावण्य, वर्णोत्कर्ष सौन्दर्य्य, कुसुम-विकाश विलास, चञ्चलता लीला, कोरक पुलक, विकाशोन्मुख कलिका मुख, सञ्चारित सौरभ नि:श्वास, भ्रमरमाला केशपाश, बिम्बफल अधर और पुष्पफल कलेवरसा बोध हुआ।

वसन्तका कार्य्य कैसा असङ्गत है। भ्रमरोंने मधुपान किया, पुंस्कोकिल उन्मत्त होकर वाचाल हो गये। बिचारे पथिक अस्थिर हो गये। वियोगिनी बाहुलताके मूलको अश्रुजल से सींचने लगी। उससे जीर्ण-शीर्ण वृक्षोंके मूलसे अङ्कुर निकल पड़े। वसन्तका असङ्गत कार्य्य देखकर वे विस्मित हुए और इच्छानुरूप आहार-विहार करके बड़े सुखसे इसी स्थानपर चार वर्ष चार दिन के समान बिता दिये।

एक दिन भीमसेन ने कहा,—"धर्मराज ! पहले अरण्य में हम लोगों का एक वर्ष बीता था, फिर तीर्थ-भ्रमणमें पाँच वर्ष व्यतीत हुए; और कुबेर के यहाँ चार वर्ष व्यतीत किये। इस प्रकार ग्यारहवाँ वर्ष बीत रहा है। हम लोग केवल आप के सत्य-व्रत का पालन करने के लिये इतना समय बड़े कष्ट से व्यतीत कर रहे हैं। इस समय हमलोग स्वर्ग के समान रमणीक स्थान में रहते हैं। यह भौम-स्वर्ग है। युवराज दल के क्लेश भी सुनते नहीं हैं। इस स्थान पर हमलोग चिरकाल तक वास करके, बड़े सुख के साथ जीवन-यात्रा निर्वाह कर सकते हैं। उत्कृष्ट स्थान में रह कर, मेरे हृदय से राज्य-भोग की इच्छा दूर हो गयी है; किन्तु वैर निर्यातन की वासना पूर्ववत् प्रदीप्त है। द्रौपदी के आलु-लायित केशपाश को देखने से दुराचारियों के अत्याचार स्मरण हो आते हैं, जिससे मैं अस्थिर हो जाता हूँ। अतएव अपराधी शत्रुओं के मारने का कोई उपाय सोचिये।"

राजा युधिष्ठिर ने सब से परामर्श कर, अब लौटने का विचार स्थिर किया। अनन्तर कुबेर से कह कर, पूर्व-परिचित मार्ग से बदरिकाश्रम पहुँचे। लोमश प्रस्थानोद्यत पाण्डवों को पितृवत् उपदेश देकर और उन लोगोंके द्वारा सत्कृत होकर, उन्हें आशीर्वाद देकर स्वर्ग को चले गये। पाण्डव अपने साथियों के साथ घटोत्कच प्रभृति राक्षसों के कन्धों पर सवार होकर, सुबाहु के राज्य में पहुँचे। किरात-राज सुबाहु आगे बढ़

कर सम्मान पुरःसर उन लोगों को अपनी राजधानी में ले गये। राजा युधिष्ठिर ने यहाँ से घटोत्कच प्रभृति को भेज दिया। आप बनचर राजाओं के साथ आत्मीयता बढ़ाने के लिये कुछ दिन वहीं रह गये। इसके बाद वहाँ से चल कर, बड़े कष्ट से बहुत दिनों में काम्यक वन में पहुँच गये।

एक दिन महानुभाव पाण्डव काम्यक वन में सुख-पूर्व्वक बैठे थे। इसी समय पाण्डव-हितैषी यदुवंश-वर्द्धन देवकी-नन्दन ने वहाँ पहुँच कर, तीर्थ पर्य्यटन करने के लिये संवर्द्धना कर के, धर्म्मराज को अभिवादन किया। अनन्तर प्रिय सुहृद् अर्जुन का आलिङ्गन किया। पाण्डव जब वासुदेव का यथेष्ट सम्मान करके उन के चारों ओर बैठ गये, तब अर्जुन ने स्वर्ग जाने के समय से लेकर असुरों के मारने तक का समाचार उन से कह सुनाया। महात्मा मधुसूदन ने इस वृत्तान्त से प्रसन्न हो कर पाण्डवों से कहा,—"आप लोगों के भाग्य से अर्जुन सभी दिव्यास्त्र संग्रह करके लौट आये हैं। अब आप लोग सुख-पूर्व्वक शत्रु के हाथ से अपनी राज्यलक्ष्मी का उद्धार कर सकेंगे।"

युधिष्ठिर ने कहा,—"मधुसूदन! आप विपद् के समय हम लोगों की रक्षा करते हैं, सम्पद् के समय उपदेश प्रदान करते हैं, आपही हम लोगों के अद्वितीय सहायक और अद्वितीय गति हैं। मैं ने प्रतिज्ञानुसार द्वादश वर्ष वनवास किया, अब एक वर्ष और अज्ञातवास करके फिर आप का दर्शन कर, हम

लोग सुखी होंगे। हम लोगों की सदा यही वासना है, कि चिरकाल तक आपमें अनुरक्त और शरणागत होकर रहें।"

कृष्ण ने कहा,—"धर्म्मराज! आप जिस समय जिस स्थान पर इच्छा कीजियेगा, यादवगण और यादवी सेना अग्रावह हो कर आप की सहायता करेगी। आप ने सभा में जो प्रतिज्ञा की थी, वह किसी प्रकार टूटने न पावेगी। पीछे जो कर्त्तव्य है, उसका मैं अभी से प्रबन्ध कर रक्खूँगा। अनन्तर द्रौपदी से कहा,—"प्रिय सखि! प्रतिविन्ध्य प्रभृति तुम्हारे पुत्र धनुर्वेद की शिक्षा में अनुराग रखने के कारण, मातुलालय छोड़ कर, द्वारावती में रहते हैं। तुम या कुन्ती जिस प्रकार उन का लालन-पालन करती थीं, सुभद्रा यत्न-पूर्वक उनका वैसा ही लालन-पालन कर रही है। अभिमन्यु उनको शिक्षा देता है। तुम्हारे आलस्य-रहित पुत्रों की परीक्षा ली है, वे भली भाँति धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।" यह कह कर, और सब को सन्तुष्ट करके द्वारकानाथ द्वारका को चले गये। पाण्डव भी अज्ञातवास के लिये मन्त्रणा करने लगे।